उत्तराधिकारी

H
813.31
Y 26 Ut

H
813.31
Y 26 Ut

यशपाल

विप्लव पुस्तक माला—२३

उत्तरांधेकारी

(पहाड़ी जीवन की रोमांचक कहानियाँ)

यशपाल

परिमार्जित

(तृतीय संस्करण)

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग,

लखनऊ

अक्टूबर १९६२

संशोधित मूल्य

पांच रुपया

प्रकाशक —
विप्लव कार्यालय
ल ख न ऊ

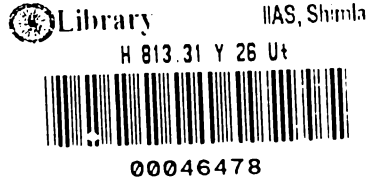

पुस्तक के प्रकाशन और अनुवाद के सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित हैं।

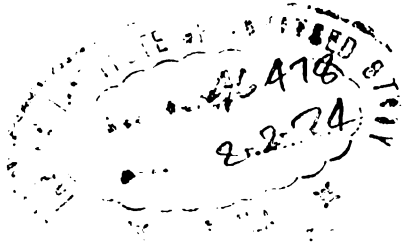

मुद्रक :—
साथी प्रेस
ल ख न ऊ

समर्पण

गत तीन वर्षों से अलमोड़ा में बिताये अनेक महीनों में सहृदय परिचितों से इस पहाड़ी देश का कुछ परिचय पा कर यह कहानियां लिख सका हूं। यह कहानियां अलमोड़ावास की स्मृति में उन्हीं साथियों को समर्पित हैं।

यशपाल

सितम्बर १९५१
डिग्गी बंगला,
अलमोड़ा

क्रम

कहानियां	पृष्ठ
ऐं ! ऐं !! का उत्तर	५
उत्तराधिकारी	१३
जाब्ते की कारवाई	२८
अगर हो जाता ?	३५
अंग्रेज का घुंघरू	४६
अमर	५५
चन्दनमहाशय	६४
कुल-मर्यादा	७४
डिप्टी साहब	८५
जीत की हार	९६

"एं एं !!" का उत्तर

कुछ दिन एक बहुत तंग जगह में रहने का अवसर हुआ था। सोना, बैठना, रांधना और नहाना-धोना सब एक ही कमरे में था। कमरे में एक ओर दरी-चटाई बिछा कर बैठने की जगह बना ली गई थी। एक कोने में अंगीठी और बर्तन, दूसरी ओर कोने में मोरी के पास बाल्टी-लोटा और साबुन रखा रहता था।

घर में आठ-नौ मास का एक बच्चा भी था। बच्चे की मां सीने-पिरोने में लगी हुई थी। मैं एक ओर बैठा कुछ पढ़ रहा था। बच्चा घुटनों के बल रेंगता बाल्टी-साबुन के पास जा पहुंचा।

"एं ! एं ! !" बच्चे का स्वर सुनाई दिया। देखा, बच्चा साबुन की बट्टिया मुंह में डाल रहा था।

"देखो, देखो !" बच्चे की मां का ध्यान उधर दिलाया, "साबुन खा रहा है।"

"खायेगा नहीं !" मां ने सिलाई की ओर से आंख नहीं हटाई।

"मुंह में डाल रहा है, जल्दी उठो !" आग्रह किया।

"नहीं, खायेगा नहीं।" मां मुस्करायी, "ध्यान खींचने के लिये डरा रहा है। उधर मत देखो, छोड़ देगा।"

कुछ विस्मय हुआ। पुस्तक की ओर मुंह मोड़ कनखियों से देखता रहा। बच्चे ने साबुन नीचे डाल दिया और खाली डिबिया से खेलने लगा।

"हां, सचमुच नहीं खा रहा" मैंने स्वीकार किया, "बड़ा शैतान है !"

"अब फिर देखना !"

मां सिलाई से ध्यान हटा, बच्चे से बोली—"हाय, साबुन खा रहा है ! ना, ना बेटा ! छि, छि ! ना, यह नहीं खाना।"

बच्चा फिर साबुन मुंह में डालने लगा।

बच्चों से निभा पाने के लिये उन का स्वभाव समझना आवश्यक होता है।

× × ×

डा० रामविलास, अमृतराय और चन्द्रबलीसिंह मेरी रचनाओं की दस-दस, बीस-बीस पृष्ठ की आलोचना करते हैं। मैं उन्हें देखता न होऊं सो बात नहीं। बहुत से लोगों के बार-बार आग्रह करने पर भी उन की 'ऐं ! ऐं !!' का उत्तर नहीं देता। कारण ऊपर की घटना से स्पष्ट है।

पाठकों का ध्यान आकर्षित करने और अपने नाम की चर्चा सुनने की इच्छा उन में स्वाभाविक है। कब उन की 'ऐं ! ऐं !!' का उत्तर देना उचित है और कब उपेक्षा करना, यह आलोचकों की 'ऐं ! ऐं !!' के तथ्य को परख कर रचनात्मक लेखकों को स्वयं ही समझना चाहिए। राहुल जी ने उपेक्षा ही की। रांगेय राघव ने उस की इतनी परवाह क्यों की ? इतनी अच्छी और बेजोड़ चीजें लिखना छोड़ कर केवल 'अहं' के प्रदर्शन के लिये की जाने वाली 'ऐं ! ऐं !!' की ओर ध्यान देना। परिणाम हुआ केवल आदत बिगाड़ना। अब 'ऐं ! ऐं !!' इतनी बढ़ गई है कि उत्तर देना जरूरी हो गया।

× × ×

यह बात नहीं कि पाठक से लेखक कुछ सीखता न हो। जनता से ग्रहण की हुई भावनायें और प्रेरणायें ही साहित्य बन कर फिर जनता की ओर लौटती हैं, जैसे वाष्प बन कर पृथ्वी से ऊपर उठा जल बादल बन कर पृथ्वी पर बरसता है। आलोचकों को पाठकों का प्रतिनिधि ही समझा जाना चाहिये। जनता पर लेखक की रचना का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव की प्रतिक्रिया ही आलोचकों द्वारा प्रकट होनी चाहिये ताकि लेखक के प्रयत्न पाठकों के लिये अधिक उपयोगी और सन्तोषप्रद हो सकें। लेकिन आलोचक जब सर्व-साधारण पाठकों पर पड़े प्रभाव या उनकी प्रतिक्रिया की उपेक्षा कर उन्हें आज्ञा दे कि तुम पर ऐसा प्रभाव पड़ना चाहिये, तो वह जनता का वैसा ही प्रतिनिधित्व करता है जैसा कि जनता के विचारों का दमन करने वाला तानाशाह कर सकता है।

प्रगतिशीलता के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाला आलोचक अभी कल तक रचनात्मक लेखक को समझाता था कि जनता की आर्थिक लड़ाई और वर्ग चेतना के अतिरिक्त किसी और विषय पर लिखना पलायन है। आज वह राहुल पर साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का रक्षक होने की तोहमत इसलिये लगाता है कि राहुल ने अभी इस देश में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से संघर्ष की आवश्यकता होते हुए भी वर्गहीन समाज के लक्ष्य का परिचय जनता को दे दिया। रामविलास की बुद्धि के अनुसार राहुल ने ऐसा कर 'नये जनतंत्र' के लिये संघर्ष को कमजोर बनाया। मानो, वर्गहीन समाज को लक्ष्य मानने वाली जनता जनतन्त्र का विरोध या उपेक्षा करेगी।

प्रगतिवाद के प्रतिनिधित्व का दम्भ करने वाले इस आलोचक के मत में, राहुल जी का यह काम 'त्रात्सकीवाद' है। ऐसे विकट मार्क्सवादी के अनुसार जर्मनी में सामन्तवाद और साम्राज्यवाद का अन्त हुए बिना 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' लिख कर संसार के मजदूरों के सामने वर्गहीन समाज का लक्ष्य रख देना क्या था? रूस में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद दोनों के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता रहते हुए लेनिन का रूस के मजदूरों को वर्गहीन समाज का लक्ष्य समझाना क्या था? यदि मार्क्स और लेनिन आज मौजूद होते तो रामविलास पाठकों की नजर में चढ़ने के लिये उन दोनों को भी त्रात्सकीवादी बता सकता था। जो आदमी 'लक्ष्य' और 'तात्कालिक कार्यक्रम' के अन्तर को हड़प जा सके, समाज की अनेक समस्याओं की ओर से आंखें मूंद सके वही इतना हत-बुद्धि हो जा सकता है कि अपने 'अहं' के फेर में, अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने का हो-हल्ला खड़ा करने के लिये प्रगतिवाद की साझी नाव में छेद कर दे।

राहुल को सामन्तवाद और साम्राज्यवाद की रक्षा करनी थी इसीलिये उन्हों ने मानवता के कल्याण का एकमात्र उपाय 'समाजवाद ही क्यों?' क्यों बताया है? 'ऐं ऐं!' का प्रयोजन तो पूरा हो गया। लोगों ने चकित हो कर पूछा—हिन्दी जगत को समाजवाद का परिचय सब से पहले और विस्तृत रूप में देने वाले और रूढ़िवादियों के क्रोध का पात्र बनने वाले लेखक को भी सामन्तवाद और साम्राज्वाद का सहायक सिद्ध कर देने की विद्वता किस में है? बस काफी है। नाव को कुछ आगे बढ़ाने की योग्यता दिखा कर ध्यान आकर्षित नहीं किया जा सकता तो नाव में छेद करके ही सही। ध्यान आकर्षित करने के लिये शरारत निश्चय ही अधिक सफल होती है।

और उदाहरण लीजिये, मेरी दो कहानियों की आलोचना से अमृतराय ने निष्कर्ष निकाला है :—'यह सड़ी-गली साम्राज्यवादी नैतिकता है जिस का समाजवादी नैतिकता से रत्ती भर मेल नहीं' और 'यह बेहूदा बात कहने की हिम्मत बोस को इसलिये हुई कि हमारा समाज पुरुष-शासित समाज है। जिस में पुरुष शोषक है और स्त्री शोषित।' जिन कहानियों से ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं, अमृतराय उन्हें साम्राज्यवाद के हाथ मजबूत करने वाली कहानियां बताते हैं। उन की राय में साम्राज्यवादी नैतिकता के प्रति घृणा और विरोध भावना पैदा करना साम्राज्यवाद के हाथ मजबूत करना है ? ऐसी 'ऐं ! ऐं !!' का क्या उत्तर ?

मेरी 'फूलो का कुर्त्ता' कहानी की अन्तिम पक्तियां हैं—"बदली हुई स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न में क्या से क्या हो जाता है ?.....हम फूलो के कुर्ते के आंचल में शरण पाने के प्रयत्न में उघड़े चले जा रहे हैं और नया लेखक कुर्ते को हमारे चेहरे से नीचे खींच देना चाहता है।' अमृतराय इस कहानी को आधी दर्जन बार पढ़ जाने पर भी इस का सिर-पैर कुछ नहीं समझ पाये। मैंने यह कहानी १९४६ में एक वक्तव्य के रूप में बम्बई के प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक में पड़ी थी। वहां यह कहानी सभी को 'बहुत साफ' मालूम हुई थी। बाद में 'जन युग' के अनुरोध पर उन्हें इसे छाप लेने की भी अनुमति मैंने दे दी थी। यह सब इसलिये कि उन लोगों की दृष्टि आलोचक की दृष्टि नहीं थीं। एक पाठक आलोचक की राय इस कहानी के लिये थी कि इस में कला का संकेत न रह कर प्रचार का मुंहफटपना आ गया है। प्रचार की स्पष्टता का दोष इस कहानी में स्वीकार किया जा सकता है परन्तु अमृतराय कहते हैं कि उन्हें इस का भाव, रहस्य या सिर-पैर कुछ समझ नहीं आया। यह है एक आलोचक की पैनी सूझ !

संक्षेप के लिये मेरे सब से छोटे उपन्यास 'पार्टी कामरेड' का ही जिक्र पर्याप्त होगा। अमृतराय और रामविलास को इस में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं पर कलंक के धब्बे लगाये गये दिखाई देते हैं। यह है आलोचकों की ज्ञान-दृष्टि। और पाठकों की ? इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही नागपुर की मजदूरसभा के अन्तर्गत 'प्रेस कर्मचारी संघ' के कार्यकर्त्ता प्रचार के लिये इस पुस्तक को लागत मात्र मूल्य में बेच सकने के लिये बिना मजदूरी लिये छापने और इस के कागज के लिये आपस में चन्दा कर लेने के लिये तैयार थे। यह है सर्व-साधारण मजदूर

की परख परन्तु शायद उन्हें पर्याप्त रूप से सचेत और सतर्क नहीं माना जायगा। 'पार्टी कामरेड' के छपने से पूर्व उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्तों में कम्युनिस्ट संगठन के तत्कालीन निरीक्षक साथी सरदेसाई ने अवसरवश इसे देख लिया था। राय दी थी कि यह उपन्यास उन्हें अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास 'For Whom the Bell Tolls ?' से अधिक अच्छा लगा। प्रगतिशील आलोचकों की बात पहले कह चुका हूं। क्या उन की आलोचना को सर्वसाधारण जनता की प्रतिक्रिया का प्रतिनिधि मान लिया जा सकता है ?

जब आलोचना का आधार सैद्धान्तिक न होकर केवल अहं प्रदर्शन का उन्माद (हिस्टीरिया) हो, तब उस 'ऐं ! ऐं !' का उत्तर क्या ? एक समय अति वामपक्ष में झुक कर सर्वसाधारण को विरोधी बना लेने की भूल हुई तो आज 'संयुक्त मोर्चे' के नाम पर, वास्तविक लक्ष्य की ओर संकेत करने को ही त्रात्सकी-वाद बताया जा रहा है। संयुक्त मोर्चे का अर्थ है जनता के उद्बोधन और प्रगति के लिये यथा-सम्भव विस्तृत समर्थन और सहयोग पाने का प्रयत्न। संयुक्त मोर्चे के नाम पर जनता के उद्बोधन और प्रगति के लिये प्रयत्न को बलिदान नहीं कर दिया जा सकता।

आज संयुक्त मोच का रूप रूढ़िवाद और प्रतिगामी भावना की चापलूसी बन रहा है। यह संयुक्त मोर्चा नहीं बल्कि प्रतिगामिता के सम्मुख आत्म-समर्पण और पिछलग्गूपन है। सम्भवतः त्रात्सकी उतना अज्ञानी नहीं था जितना कि अहमन्य, स्वार्थपर और बदनीयत ? त्रात्सकीवाद की राह क्रान्ति और जनहित के लक्ष्य की अपेक्षा अपने 'अहं' को अधिक महत्व देना है। यह बदनीयती है। साहित्य में भी त्रात्सकीवाद की पहचान यही है। जो लेखक या आलोचक एक ही कुलांच में, बिना किसी आत्मालोचना के अति-वामपक्ष के मोच के नेतृत्व से संयुक्त मोच के नेतृत्व पर चौकस खड़ा हो जा सकता है उसे विचारक या चिन्तक नहीं कहा जा सकता। वह न तब ईमानदार था न अब है। यह करतब के बल पटेबाजी या व्यर्थ ताल ठोंकने की हुंकार मात्र है। ऐसे खलीफा कभी भूल स्वीकार नहीं करते सदा भूल सुझाने का ही दम भरते हैं।

आलोचना लेखक और साहित्यिक प्रगति के लिये बहुत सहायक हो सकती है बशर्ते कि नीयत नेक हो !

यशपाल

उत्तराधिकारी

उत्तराधिकारी

दानपुर के इलाके की गरीबी के खयाल से हरसिंह का परिवार अच्छा खाता-पीता था। उस के बाप और चाचा ने पुश्तैनी जमीन बांटी नहीं थी। उस के चाचा के लड़के, दो छोटे भाई भी थे। खेती के काम-काज के लिये घर में आदमियों की कमी न थी। उतनी जमीन पर कितने आदमी काम करते? पहाड़ के छोटे-छोटे खेतों में एक आदमी मेहनत करे या दो, फसल की निकासी में कुछ फरक नहीं पड़ता। मर्द खेत जोत कर औरतों के हवाले कर देते हैं और लुनाई तक वे ही उन्हें सम्भालती हैं। गोरू और भेड़-बकरी की रखवाली बच्चे कर लेते हैं। उनके सीधे-सादे जीवन की सभी आवश्यकताएं वहां पूरी हो जाती हैं। अपने खेतों के मंडुआ और चुआ का अनाज, गौओं से दूध-घी और घर की भेड़ों की ऊन से कता-बुना कपड़ा। मर्दों के कंधों से कमर तक, घर के बुने कम्बल का गाता लोहे के एक बड़े सुए से सम्भला रहता है। कमर ढकने के लिये कभी हाथ भर और कभी बालिस्त भर चौड़ा कपड़ा। स्त्रियां भी ऐसा ही गाता और नीचे मोटा लहंगा पहने रहती हैं। शौक किया तो गाते के सुए में चांदी की जंजीर लटका ली।

पहाड़ी देहातों के आपसी विनिमय में रुपये-पैसे की जरूरत प्रायः नहीं पड़ती परन्तु कुछ काम हैं जो रुपये से ही पूरे होते हैं। सरकारी मालगुजारी, गहना, ब्याह-शादी का दस्तूर और कभी अदालत-कचहरी का काम रुपये के बिना निभ नहीं सकते। दानपुर में ऐसी कोई पैदावार या कारोबार नहीं जो रुपया लाये। जितना पैदा होता है, वहीं खप जाता है। दानपुर में रुपया आता है—कुछ तो निगला की चटाइयों की बिक्री से और खास कर सरकारी खजाने से सिपाहियों की तनखाहों और पेन्शनों के रूप में।

दानपुर की पट्टी खूब फैली हुई है परन्तु खेती और वस्ती कम, जंगल और पहाड़ ज्यादा। सरकारी खजाने से लगभग दो लाख रुपया सालाना तनखाहों और पेन्शनों के रूप में वहां आता है। इस रुपये का मूल्य दानपुरिये अपने जवानों की जिन्दगियों और खून से चुकाते हैं। दानपुरिया जवानों के गठीले, सवल और दृढ़ शरीर, उन की निर्भयता और भोलेपन के कारण ब्रिटिश साम्राज्यशाही की सेनाओं के लिये भरती करने वाले अफसर इन्हें सदा चाव और पक्षपात की दृष्टि से देखते रहे हैं। वहां विरला ही परिवार होगा जिस ने सेना को जवान न दिये हों। दानपुर के जवानों की हड्डियों से दूर-दूर देशों की भूमि उर्वरा हुई हैं। दानपुरियों के पास रुपया कमाने का दूसरा उपाय है भी नहीं।

दानपुर में व्याह कम उम्र में ही हो जाते हैं। हरसिंह का भी व्याह जल्दी ही हो गया था। उस की वहू वारह वरस की हुई तो ससुराल आ गई। घर और खेती का काम वटाने को दो हाथ और हो गये। हरसिंह के दो चचेरे छोटे भाई भी थे। वहनें गईं तो वहुएं आने लगीं। हरसिंह वीस वरस का हो गया था। वह रानीखेत जा कर अंग्रेज सरकार-वहादुर की फौज में भरती हो गया।

हरसिंह के वाप और चाचा निभाते चले आ रहे थे परन्तु परिवार वढ़ा तो खटपट भी होने लगी। हरसिंह के चाचा के लड़कों का खयाल था—'काम तो सब हम ही करते हैं, जमीन कहने को साझी है। ताऊ का लड़का पलटन में चला गया और उस की तनखाह ताऊ अपनी जेव में रख लेता है।'

हरसिंह का वाप सोचता—'अव मैं लड़के की कमाई से खेत जमीन खरीदूं तो उस में हिस्सेदार दूसरे भी होंगे!' आखिर पंचायत में वटवारा हो गया।

हरसिंह वरस के वरस छुट्टी पर आता और अपनी वहू 'मानी' की भरती हुई जवानी देखता। हरसिंह की वहू पंद्रह वरस की हो रही थी। उस साल हरसिंह छुट्टी पर घर नहीं आ सका। पड़ोसी गांवों के दूसरे सिपाहियों में से भी वहुत कम घर आये। हरसिंह छुट्टी पर नहीं आया लेकिन पटवारी के यहां से हरसिंह के घर संदेश आया कि तुम्हारा लड़का लाम पर समुद्र पार चला गया है। तुम डाकखाने जाकर उस की तनखाह ले लो। हरसिंह जब तक समुद्र पार रहेगा, हर माह इसी प्रकार तनखाह मिलती रहेगी।

मानी ने अपने आदमी के समुद्र पार लाम पर चले जाने की वात सुनी तो उदास हो गयी पर उदास होकर वैठने से चलता कैसे? घर और खेती का काम तो करना ही था, उदासी हो या खुशहाली! और आंख की

ओट जैसा एक कोस, वैसा सौ कोस । यों भी तो बरस में महीने भर को ही आता था ।

दो बरस और बीत गये । मानी के शरीर पर ऐसी सुडौल जवानी फूट रही थी कि जिस के पास से गुजरती, एक नजर देखे बिना न रह पाता । गांव के और पड़ोसी गांवों के भी अधिकतर जवान सरकारी फौज में भर्ती थे; लेकिन गांवों में आदमी तो थे ही । मानी लोगों की आंखें पहचानने लगी और आंखों में देखने भी लगी । दिन भर की हाड़-तोड़ मेहनत में जरा हंस लेने, मुस्करा लेने से मन हलका हो जाता था । घर में बूढ़े-बुढ़िया के सामने कब तक मुंह लटकाये बैठी रहे ।

मानी के सास-ससुर उसे खेतों और घर के काम-काज में या पशुओं के प्रति बेपरवाही के लिए डांटते ही रहते थे । अब सास लोगों से बोलने-चालने पर भी डांटने लगी । कुछ दिन तो मानी इस डांट-फटकार को कान के पीछे डाल चुप रह गई लेकिन जब उस के आने-जाने पर रोक-टोक लगने लगी तो मानी ने भौंहें टेढ़ी कर जवाब दे दिया—"घर में रहने नहीं देती हो तो बता दो ! ·····दो रोटियां ही तो खाती हूं । मेरे लिये यहां क्या रक्खा है ? ·····जब आयेगा, उसे जो कहना होगा, कह लेगा ! ···तुम्हें भारी हो रही हूं, तो कह दो; मेरे भी हाथ-पांव चलते हैं···दुनिया बहुत पड़ी है ।"

इस पर भी जब ससुर ने धमकाया तो सुबह पशुओं के लिये घास काटने जाकर मानी रात को भी न लौटी । ससुर उसे खुशामद कर पड़ोस के गांव से लौटा लाया । बूढ़ा बदनामी से डर गया और सोचा—बेटा तो लाम पर गया है, यह भी चल दे तो पीछे खेती का काम कौन निभायेगा ? घर में कोई बच्चे भी नहीं कि गोरू ही रखा लेता । पानी, ईंधन और पशुओं के लिये घास-पात की मदद से भी जायें ।

चार बरस बाद लाम खतम हुई । कुछ सिपाही लौटे और कुछ नहीं लौटे । हरसिंह नहीं लौटा लेकिन उस की तनखाह बराबर मिलती रही । खबर मिली वह लाम में जख्मी हो गया था, अस्पताल में है । चंगा होकर आयेगा ।

इसी बीच एक दिन मानी के ससुर के पेट में मरोड़ उठी और वह चल बसा । बुढ़िया बेचारी हलियों से हल जुतवा कर बहू के साथ खेती निभा रही थी । मानी का मन नहीं लगता था । शरीर थकावट से बिखरा-बिखरा जाता था । वह मन को मारती परन्तु पड़ोसी, खास कर जुहार, बेचैन कर देते···वह बेबस हो जाती ।

मानी फिर पड़ोस के गांव चली गई। जुहार उसे ढांटी (घरवाली) बैठाने को तैयार था परन्तु मानी की सास ने जा कर पट्टी के रंगरूटी-हवलदार के सामने दुहाई दी कि उस का बेटा सरकार की नौकरी में खून बहा रहा है और लोग उस की बहू को भगा ले गये। सरकार हमारा इतना भी ख्याल नहीं करेगी ? रंगरूटी-हवलदार को भी पसन्द नहीं था कि जुहार अकेला मानी को संभाल कर बैठ जाये। हवलदार ने जुहार को धमका दिया। अब मानी से हंसने-खेलने को तो बहुत लोग तैयार थे लेकिन उसे अपने यहां बसा लेने का साहस किसी को न था।

× × ×

हरसिंह ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये महायुद्ध में लड़ता हुआ लगभग युद्ध समाप्त होने के समय बुरी तरह से जख्मी हो गया था। उस की कमर के आस-पास लगने वाले जख्म बहुत पेचीदा थे। विषैली गैस का प्रभाव भी उस के स्वास्थ्य पर गहरा पड़ा था। प्रायः डेढ़ बरस तक फौजी अस्पताल में उस का इलाज होता रहा। वह चलने-फिरने के लायक हो गया परन्तु मर्द नहीं रहा। अंग्रेज सरकार ने उस की वफादारी और युद्ध में जख्मों से बेकार हो जाने के कारण उसे आधी नौकरी में ही पूरी पेन्शन दे कर छुट्टी दे दी।

हरसिंह पूरे साढ़े चार बरस बाद गांव लौटा। लौट कर देखा, उस का बूढ़ा बाप नहीं रहा था। घर में उस की मां, बहू और उस का एक लड़का मौजूद था। अपनी अनुपस्थिति में हो गया लड़का देख हरसिंह क्रोध से झल्ला उठा। उस ने सोचा, लड़का उस का होता तो चार बरस से ज्यादा का होता। बच्चा था केवल दो बरस का। हरसिंह की मां ने माथे पर हाथ मार कर कहा—"·····तो मैं क्या करती ?·····मैं ही जानती हूं जैसे मैंने इस चुड़ैल को नथिया कर रोके रखा। अब वह सब जाने दे ! तू भी तो ऐसे वक्त चला गया·····। उस की जवानी का अंधड़ था। कौन नहीं जानता बरसात की पहली आंधी में पेड़ गिरा ही करते हैं। अब ढंग से निभा ! लड़का है तो जवान भी होगा। अब तेरा ही है·····।"

हरसिंह ज्यों-ज्यों इस बारे में सोचता, उस के सिर में खून चढ़ता जाता। उस का व्यवहार मानी से ऐसा था जैसे जेलर का अपराधी से होता है। मानी

सिर झुकाये चुप रह जाती या रो देती। जहां तक बन पड़ता, वह पति की आंखों से ओझल रह कर घर या खेती के काम में उलझी रहती। कभी हरसिंह मानी पर हाथ छोड़ बैठता। मानी वह भी सह जाती परन्तु हरसिंह का गुस्सा बढ़ता ही जा रहा था। वह मानी की हर बात पर आग-बबूला हो जाता। बात-बात में बच्चे को ठोकर मार देता। मानी और तो सब सह जाती पर बेकसूर बच्चे पर मार न सह सकती।

मानी ने बच्चे को मारने पर एतराज किया। हरसिंह और भी बिगड़ उठा—"मैं अभी तुझे और तेरे इस हरामी को काट कर फेंकता हूं·····।"

हरसिंह सचमुच छत की धन्नी में खोंसे हुए लकड़ी काटने के दांव की ओर लपका। मानी के शरीर से मानो सारा रक्त खिंच गया परन्तु प्रतीक्षा कर गिड़गिड़ाने का अवसर नहीं था। अपने बच्चे को छाती से चिपटा कर वह पूरी शक्ति से भाग गयी।

हरसिंह जब धन्नी से दांव खींच कर लौटा तो मानी बच्चे को ले कर भाग चुकी थी। उतना तेज भाग कर जवान मानी को पकड़ लेना हरसिंह के सामर्थ्य में नहीं था। होंठ काट कर उस ने सोचा—भाग गई····· ! खैर जब लौटेगी···!

मानी सांझ तक नहीं लौटी। मां ने रोटी सेंक दी परन्तु हरसिंह खा नहीं सका। वह पुआल पर कम्बल बिछा कर लेटा तो दांव सिराहने रख लिया। मानी की दुष्टता का बदला लिये बिना वह जिन्दा रहने को तैयार न था। जब मानी आधी रात तक भी न लौटी तो उसे निश्चय हो गया, अब नहीं आयेगी। सोचा—जुहार के यहां गई होगी, जाये ! मैं हरजाई को अपने यहां नहीं रक्खूंगा !

दूसरे दिन भी मानी नहीं लौटी तो हरसिंह ने टोह ली। वह सचमुच जुहार के यहां गई थी। वह जुहार के यहां पहुंचा। जुहार और उस का भाई हाथ में दांव लेकर सामने आये और बोले—"बोल क्या करेगा ?"

हरसिंह ने कहा—"अच्छा पंचों में फैसला होगा।"

हरसिंह ने पंचायत कराई। पंचों ने तम्बाकू और 'जाग'* का सत्कार पाकर फैसला दिया—मानी हरसिंह की ब्याहता औरत है। जुहार मानी को

---

* स्थानीय चावल की शराब।

ढांटी (घरवाली) रखना चाहता है तो हरसिंह की इज्जत का हर्जाना यानी जर-जेवर की कीमत सौ रुपया दे ।

हरसिंह ने भरी पंचायत में जुहार से सौ रुपया लेकर अपनी इज्जत तो बचा ली पर उस के मन पर लगा घाव पूरा नहीं हुआ ।···पर जिन्दगी तो निभानी ही थी । वह चुपचाप जानवरों और खेती का काम करने लगा । अकेले आदमी के लिये काम इतना था कि दिन भर किये पर भी पूरा न होता । हरसिंह के लिये यही अच्छा था । बूढ़ी मां और बेटा दिन काटने लगे । वे न आपस में बोलते और न किसी दूसरे से ही ।

× × ×

मानी को गये तीन बरस हो चुके थे । हरसिंह ने सब तरफ से ध्यान हटाकर अपनी जमीन में ही आंखें गड़ा दी थीं । सरकारी कायदे से उस ने अपनी जमीन से लगती बेनाप जमीन तोड़ कर पांच नाली खेत और बना लिये । अपनी दोनों भैंसों का घी जमा कर बेचता रहा और तीन बरस की पेन्शन का रुपया जमा कर उस ने बारिसों से भी पांच नाली खेत और खरीद लिये ।

गांव के लोग उस की इन बातों पर हंसते—'अकेली तो जान है ।····· किस के लिए कर-कर के मर रहा है । चरस की चिलम के लिये एक पैसा भी खर्चने में जान निकलती है ।' बारिसों ने भी इसी खयाल से जमीन सस्ती दे दी कि मुफ्त का रुपया दे रहा है तो क्यों न लें ?···इस के आंख बन्द करने पर तो जमीन अपनी ही होगी । दस नहीं तो पन्द्रह बरस और जोत लेगा, फिर तो इस की कमाई अपने ही बाल-बच्चों के हाथ आयेगी ।·····इस का कौन है ? क्या छाती पर रख कर ले जायेगा ?

उस के बारिसों और गांव वालों ने सुना कि हरसिंह इस उम्र में ढांटी के लिये औरत ढूंढ़ रहा है तो हैरान रह गये । जाड़े के दिनों में जब खेती, फसल और ईन्धन कटाई का कोई काम नहीं था, हरसिंह छः-सात दिन के लिये रंगोड़ की तरफ गया । एक महीने के बाद फिर छः-सात दिन के लिये उधर गया और सचमुच एक तेईस-चौबीस बरस की, कुछ बीमार-सी, दुबली-पतली सी जवान खूबसूरत औरत को ले आया ।

गांव के लोग हैरान रह गये और हरसिंह के वारिसों के कलेजे पर तो सांप लोट गया लेकिन क्या कर सकते थे। हरसिंह ने पंचायत में कह दिया कि हर्जाना भर के यानि जर-जेवर की कीमत तार कर औरत को लाया है। लोगों ने हर्जाने की रकम तीन सौ सुनी तो हैरान रह गये।

'कपकोट' के पास हरसिंह ने एक रात जिस किसान के यहां डेरा किया था, रात में तम्बाकू पीते हुये उसी को अपनी परेशानी कह सुनाई कि इतनी जमीन, गोरू और धन (भेड़-बकरी) है लेकिन वह पलटन में था तो उस की घरवाली को लोग बहका ले गये। वह घर बसाने के फेर में है।

उस के यजमान (मेजबान) किसान ने सिर पर हाथ मार अपना दुखड़ा सुनाया कि उसने अपनी लड़की कुशली, नरमा गांव के अच्छे खाते-पीते किसान को व्याही थी। बेचारी के दो बच्चे भी हुये पर देवता की माया से दोनों जाते रहे। उस कमबख्त ने दूसरा व्याह कर लिया है और उन की लड़की को दूर गांव की अपनी जमीन में डाल दिया।·····उसे बुरी आदतें हैं, शराब पीता है, जुआ खेलता है। कर्जे में 'सीगल' की अपनी जमीन बेच दी। कुशली को सौत के यहां ले गया। सौत उसे सहती नहीं। कहती है, अपने बच्चे खा गई; इस की छाया मेरे बच्चों को बुरी है। एक रोज उसे दोनों ने मारा। बेचारी रोती हुई आकर मायके बैठ गई·····।

हरसिंह कुशली के आदमी को जर-जेवर का खर्चा देकर कुशली को ढांटी बसाने के लिये तैयार हो गया। उस ने बूढ़े से कहा—"तू उस के आदमी से बात कर ले, मैं खर्चा लेकर आता हूं।"

कुशली का आदमी औरत से जान छुड़ाना चाहता था लेकिन हर्जाना मांगा तो इतना ज्यादा! हरसिंह ने पंचों के सामने हर्जाना गिन दिया और कुशली को ले आया।

हरसिंह के यहां आकर कुशली पनप गई। उस के चेहरे पर भी सुर्खी आ गई। वह खुशी-खुशी घर और खेती का काम करती। हरसिंह उसे बड़ी खातिर से हाथों-हाथ रखता परन्तु उस की गोद भरने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहा था। गांव के जवान उस से भाभी का रिश्ता जोड़ कर उच्छृङ्खलता दिखाते। वह ओंठ दबा कर आंख फेर लेती। उसे चिढ़ाने के लिये गांव की औरतें हरसिंह की कमर में गोली लगने की बात बता कर कहतीं—"·····यों ही व्याह किया है इस ने तो!"

कुशली के पास एक ही जवाब था—"तो फिर तुम्हें क्या ?"

उस वरस जाड़े की फसल बो देने के बाद हरसिंह अलमोड़ा गया। वह जानता था कि डाक्टर लोग चीर-फाड़ के अलावा और कुछ नहीं जानते लेकिन देशी वैद्य-हकीमों के पास ऐसी जड़ी-बूटी होती है कि जो चाहें कर दें। एक 'खानदानी' वैद्य जी ने उस से इक्कीस रुपये लेकर इक्कीस पुड़िया ऐसी दवाई दे दी कि लोहा खा ले तो पच जाये और पत्थर में छेद कर दे·····।

लौट कर लोगों के हंसने की परवाह न कर हरसिंह ने कुशली का बांझपन दूर करने के लिये देवता का जागर भी कराया। कुशली चुप रही; क्या कर सकती थी ? सोचा, देवता की करनी का क्या अन्त !

जब एक बरस और निष्फल बीत गया तो हरसिंह ने कुशली को समझाया,—"बालेश्वर के देवता की सब से बड़ी मानता है। तू वहां जाकर दिया जला आ !"

कुशली ने उसे समझाया—"क्यों हंसी कराते हो ? तुम्हारे चोट लगी है तो क्या हो सकता है ?"

परन्तु हरसिंह का इस तर्क से समाधान नहीं हुआ।·····यह सब खेत-जमीन आखिर किस के लिये थे ? वह सन्तान चाहता था ! उसे सन्तान की उत्कट चिन्ता थी जैसी महाराज दशरथ को अपना सिंहासन सूना हो जाने की आशंका से और महाराज शान्तनु को अपना वंश निर्मूल हो जाने के भय से। वह 'पुत्रेष्टि यज्ञ' कैसे न करता ? उस ने कुशली को समझाया—क्या यह सब काम, मकान, गोरू, खेत, जमीन दूसरों के लिये छोड़ जायेंगे·····?

वैशाख-पूर्णिमा के दिन बालेश्वर महादेव की पूजा का अपार महात्म्य होता है। हरसिंह ने कुशली को ले जाकर उसी अवसर पर दिया जलाने का निश्चय किया था परन्तु भाग्य की बात; एक विषैला कांटा हरसिंह की पिंडली में चुभ जाने के कारण उस का पांव इतना सूज गया था कि उस के लिये चलना असम्भव हो गया।

हरसिंह ने कुशली को समझाया—"देवता के यहां जाने का संकल्प किया है तो उसे झूठा करने से देवता का कोप होगा।·····जाने क्या अनिष्ट हो जाये ! तू अकेली ही जा। तू देवता की ड्योढ़ी को जा रही है तो वही रक्षा करेगा। बालेश्वर में मेला है। तू लंहगे का कपड़ा और दो-चार चीज गले और हाथ की भी खरीद लेना। डर किस का है ? अंग्रेजी राज है। सड़कों पर हरदम आदमी चलते हैं। मुसाफिर दुकानों में ठहरते ही हैं। तकलीफ न करना। चाहे जितना

रुपया ले जा दस, बीस, पचास ! अपना यह सब कुछ है किस के लिये ? जब घर में अंधेरा है तो धन-जमीन का क्या ?"

अकेली लम्बे सफर पर जाते कुशली का मन सहम रहा था परन्तु जब आदमी न माना तो क्या करती ? बेचारी चली। जिस राह हरसिंह के साथ नरमा से आई थी, उसी राह चली जा रही थी। कुछ दूर जाने पर अलमोड़ा जाते स्त्री-पुरुषों का साथ हो गया और फिर मेले में जाने वाले यात्री मिलने लगे।

वैशाख-पूर्णिमा के दिन बालेश्वर में बांझ स्त्रियां अंजली में दीप जलाकर मन्दिर के द्वार के सामने जल में दिन-रात, चौबीस घंटे दीपक की ओर टकटकी लगाये खड़ी रहती हैं। इस कड़ी तपस्या से स्त्रियों के सिर में चक्कर आ जाता है। वे डगमगा जाती हैं। ठन्डे पानी में पांव सुन्न हो जाने से वे गिर पड़ती हैं। तपस्या भंग हो जाने से न केवल देवता का वरदान नहीं मिलता, वरन् देवता के शाप का भय रहता है, इसलिये तप करने वाली स्त्रियों के घर की स्त्रियां और सम्बन्धी उन्हें कंधों और पीठ से सहारा देने के लिये साथ खड़े रहते हैं।

कुशली बेचारी अकेली थी। उसे कौन सहारा देता परन्तु वह आई थी देवता से सन्तान मांगने; दिया ले कर तप करने खड़ी कैसे न होती ! जब और स्त्रियां अंजली में दीपक ले कर मन्दिर के सामने जल में खड़ी हुईं तो वह भी खड़ी हो गई।

घड़ियों पर घड़ियां बीतने लगीं। कुशली अंजली में दीपक लिये, लौ की ओर टकटकी लगाये खड़ी थी। आस-पास खड़ी जवान लड़कियां और स्त्रियां डगमगाने लगीं और लोग उन्हें सहारा देने लगे। कोई-कोई रोने और चिल्लाने भी लगीं परन्तु उन के सम्बन्धी उन्हें थामे रहे। कुशली को सहारा देने वाला कोई नहीं था। वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रही। आधी रात बाद उसे जान पड़ने लगा कि उस की पिंडलियां बरफ के पैने फलों से कटी जा रही हैं। वह तना कट कर गिर जाने वाले पेड़ की तरह गिर पड़ेगी। उस ने अपने दांत दबा लिये, वह नहीं गिरेगी। उसे अनुभव हुआ उस का शरीर हिल रहा है। उस ने निश्चय किया, वह डिगेगी नहीं। कुशली को मालूम हुआ—सामने का मन्दिर हिलने लगा, हिल कर कबूतर की तरह तालाब के चारों ओर उड़ने लगा, पहाड़ भी झूले की चरखियों की तरह घूमने लगे परन्तु वह कहती रही—"नहीं गिरूंगी, नहीं गिरूंगी"……सचमुच गिरने लगी तो उस ने सहायता के लिये

46478

पुकारा परन्तु होंठ खुल नहीं पाये। उसे अपनी अंजली का दीपक दिखाई नहीं दे रहा था। आंखों के सामने बादल छा गये थे·····वह गई ! ····फिर मालूम हुआ कि थम गई। किसी ने उसे थाम लिया; उसे जान पड़ा, देवता ने उसे थाम लिया।

जब जोर-जोर से घंटे-घड़ियाल और शंख बजने लगे तो उसे मालूम हुआ कि उस की अंजली से दीपक हट गया। कोई उसे घसीट कर जल के बाहर ले जा रहा है, कोई उसे थामे हुये है। वह जमीन पर बैठा दी गई। कोई जोर-जोर से उस के पावों और पिंडलियों को मल रहा है। वह अनुभव कर रही थी परन्तु उस के न हाथ हिल सकते थे और न होंठ।

कुशली के कानों में सुनाई दिया—"ले चाय पी ले।" गरम-गरम चाय उस के होठों से लगी और जीभ तक बह गई। गले में पहुंचने पर गले ने घूंट भर लिया। तब उस के होंठ और घूंट भर सके।

कुशली को दिखाई देने लगा तो जाना कि कोई आदमी उस का सिर मल रहा है, कभी उस की पिंडलियों को मलने लगता है। वह सिमट गई। मुंह से बोले बिना उस ने आदमी के हाथ हटा दिये।

आदमी हंस दिया और बोला—"थाम नहीं लेता तो गिर नहीं पड़ती ?"

कुशली ने अधखुली आंखों से उस की ओर देख कर आंखें झुका लीं; मानो कह रही हो, ठीक कहता है, तूने बड़ी दया की।

सूर्य की किरणें जमीन पर फैल गई थीं। कुशली को इन किरणों से आराम मिल रहा था। वह अपनी पीठ किरणों की ओर कर लेटी रही।

वह आदमी अपना कम्बल वहीं छोड़ उठ कर कुछ दूर गया और लौटा तो पत्ते पर गरम जलेबी लिये था। बोला—"ले, यह खा ले ! जिस्म में गरमी आ जायेगी।"

कुशली धूप में मन्दिर के हाते की दीवार से पीठ लगा बैठ गई और जलेबी खाने लगी। अब सुध आने पर कुशली ने उसे पहचाना।·····पिछले दो पड़ाव से यह आदमी यात्रियों में उस के साथ ही था। कुशली को अकेले देख कर उस ने पूछा था—"तू इतनी दूर से अकेली कैसे आई ?"

उस समय कुशली ने जवाब दिया था—"ऐसे ही !·····तुझे क्या ?" परन्तु अब वह बात करने लगा तो कुशली सब कुछ बताती गई।

दोपहर तक कुशली की तबियत ठीक हो गई तो उस आदमी ने कहा—

"जरा उठ, चल मेला देखें।"

कोई औरत अकेले नहीं घूम रही थी। कुशली भी उस आदमी के साथ घूमने लगी। उसे देवता की पूजा ठीक से हो जाने का संतोष था। उस ने लहंगे का कपड़ा खरीदा, गिलट के खड़ुए और पीतल का मुलम्मा चढ़ा गुलूबन्द भी। वह आदमी रखवाली में उसी के साथ बना रहा कि कोई उसे ठग न ले, जैसे वह उसी का आदमी हो। कुशली को झेंप मालूम होती पर अच्छा भी लगता, अकेले भी तो अच्छा नहीं लगता।

रात गये तक मेला होता रहा। जगह-जगह गैस जल रहे थे। कुशली को जान पड़ रहा था कि दिन से ज्यादा और अच्छी रोशनी हो रही है। उस आदमी ने कुशली को सेव, पूरियां और मिठाई खिलाई। ऐसा तमाशा और मजा कुशली ने कभी नहीं देखा था। वह कभी थक कर उस आदमी के साथ बैठ जाती और कभी घूम कर तमाशा देखने लगती।

नींद का समय आया। कुशली राह में जिन यात्रियों की भीड़ के साथ आयी थी, उन्हें खोजने लगी। गनेर्रसिंह ने, यही उस आदमी का नाम था, कहा—"अरे, क्या ढूंढ़ती है। कौन वो तेरे सगे हैं?" चारों तरफ पेड़ों के नीचे लेटे आदमियों की ओर संकेत कर उस ने कहा, "हम लोग भी ऐसे ही कहीं एक तरफ पड़ रहेंगे।"

"नहीं," कुशली ने कहा। उसे डर सा लगा।

गनेर्रसिंह ने जिद् की—"हमारी इतनी सी बात नहीं मानेगी?" कुशली चुप रह गई तो उस ने धीमे-से मजाक किया, "तो फिर इतनी तकलीफ करके दिया क्यों जलाया था?.....देवता का वरदान खाली जायेगा?"

कुशली को लज्जा से मधुर कंपकपी-सी आ गई। "हट्ट," उस ने सिर झुका पीठ फिरा कर कहा और चुप रह गयी।

दूसरे दिन एक पहर दिन चढ़े वे दोनों मेले से चले तो गीत गाते लोगों की भीड़ के साथ नहीं, पीछे-पीछे, अलग-अलग से चल रहे थे। कुशली जानती थी उसे मीलों चल कर फिर हर्रसिंह के ही पास जाना है लेकिन इस आदमी का साथ अच्छा लग रहा था। उस का बोल, उस की नजरें उस के पसीने की गन्ध; सुहानी-सुहानी, मर्द जैसी! कुशली को ऐसा जान पड़ रहा था, देवता की तपस्या से पाया वरदान उस पर छा कर उस के शरीर को बोझिल और शिथिल किये दे रहा हो। वह बोझ ऐसे ही प्यारा लग रहा था जैसे भारी गहनों का

बोझ हो। वह बैठने की जगह देख बार-बार बैठ जाती। वह इतनी शिथिलता से चली कि बड़ी कठिनता से वे एक ही पड़ाव पार कर सके।

अगले दिन गनेरसिंह ने अधिकार के स्वर में कहा—"अब तू दानपुर की बीहड़ पहाड़ियों में कहां जायेगी ? मेरे घर चल। मेरी सैणी (घरवाली) पिछले साल डेढ़ बरस का लड़का छोड़ कर मर गई है। उसे भी पालना और अपने पेट को भी !·····मेरी पच्चीस नाली जमीन है, भैंस है, गाय है, बैल है। तू मुझे देवता ने दी है। चल कर मेरा घर बसा।···मैं तुझे नहीं जाने दूंगा !"

कुशली रो पड़ी परन्तु इस रोने में अभिमान और सुख था। फिर उदास होकर बोली—"नहीं, मैं तो जाऊंगी। वो भला आदमी है !····गम करेगा। उस ने मेरी ढांटी के तीन सौ दिये हैं।"

गनेरसिंह नहीं माना—"वो क्या तेरा आदमी है·····? तेरा आदमी तो मैं हूं। मुझे गम नहीं लगेगा। मैं तेरी ढांटी का हर्जाना भर दूंगा चाहे, जितनी जमीन बेच दूं।" उस ने कुशली को बाहों में कस लिया और बोला—"बोल, मेरा घर उजाड़ेगी ?·····मेरी नहीं है तू ?"

कुशली बोल नहीं पाई, चुप रह गई। उसे हरसिंह का बहुत ख्याल था पर गनेरसिंह की जिद्द से अभिमान अनुभव हो रहा था। वह उस के साथ चली जा रही थी। दिल कहता था, दानपुर चल; पांव चले जा रहे थे गनेरसिंह के गांव की ओर।

× × ×

बारह दिन बीत गये और कुशली बालेश्वर से नहीं लौटी तो हरसिंह को चिन्ता होने लगी। पन्द्रह दिन भी बीत गये तो वह परेशान हो गया। मन को समझाता, राह में मांदी ही पड़ गई हो; दो-चार दिन में आती होगी। उसे रात-रात भर नींद न आती। सोचता—क्या हो गया उसे, कहां चली गई ? यहां ही लोग उसे तकते रहते थे। थी तो बड़ी भली !·····आखिर है औरत की जात !

हरसिंह को निश्चय हो गया कि कुशली चली गई और सिर्फ औरत नहीं, उस की देवता से पाया उत्तराधिकारी लड़का भी चला गया। उसे जख्मी होने के कारण अपने शारीरिक असामर्थ्य का भी ख्याल आता परन्तु फिर अपने

अधिकार की बात सोचता—है तो मेरी औरत ! उसे यह भी पछतावा हुआ कि उस ने भरी गोद मानी को घर से क्यों निकाल दिया था । आज उस का लड़का कितना बड़ा हो गया है ! गोरू चराता कितना अच्छा लगता है ! उस लड़के को देख कर हरसिंह के मन में स्नेह उमड़ने लगता पर उस की बात कर के अपनी हंसी कराने से क्या लाभ था ?

हरसिंह का पांव अब ठीक हो गया था । वह कुशली का पता लगाने बालेश्वर की ओर चल दिया । पन्द्रह दिन बाद लौटा तो अकेला, चेहरे पर गहरी थकान और परेशानी लिये । खेतों में फसल तैयार हो रही थी, इसलिये बहुत दिन के लिए घर नहीं छोड़ सकता था । उस की बूढ़ी मां के हाथ-गोड़ अब कठिनता से चलते थे । वह दस-पन्द्रह मील के चक्कर में घूम कर पता लेता रहा । जेठ में मंडुआ बो देने के बाद उस ने जानवरों की रखवाली बुढ़िया के सिर छोड़ी और रंगोड़ की ओर चालीस मील का चक्कर लगा आया पर निष्फल ।

उस के गांव वालों और बारिसदारों ने समझाया कि जो औरत तेरे घर नहीं बसती, उस के पीछे तू क्यों परेशान है । हां, इस बात में सब सहमत थे कि कुशली को जो रक्खे, वह हरसिंह का हर्जाना भरे परन्तु मालूम तो हो कि बालेश्वर से कुशली को कौन, कहां ले गया ? अगर अल्मोड़ा-रानीखेत की राह हल्द्वानी पार कर देश में उतर गई तो फिर क्या पता चलता है । शहर के बीहड़, गुंजानों में कहीं आदमी की गिनती हो सकती है या उस के ठौर-ठिकाने का पता लग सकता है ? लेकिन हरसिंह हाथ पर हाथ रख बैठने के लिए तैयार नहीं था । उस के बारिस निशंक थे कि उस के औलाद हो नहीं सकती, इसलिये उसे प्रसन्न करने के लिये कुशली का पता लगाने के लिये तैयार हो गये ।

सवा बरस बीत चुका था कुशली को गये । पड़ोस के गांव 'सौवट' का ब्राह्मण कृपादत्त पिथौरागढ़ किसी गवाही में गया था । उस ने लौट कर हरसिंह को खबर दी कि मैं कटेरा गांव के पड़ोस से गुजर रहा था तो बाट में कुशली घास का बोझ लिए मिली थी । मैंने पूछा—"कैसे चली आई ?" पहले चुप रह गई, फिर आंखों में आंसू भर बोली, "जब तक वहां थी तो भली थी, अब आ गई तो आ ही गई ।" तुम्हारे लिये कहती थी, "आदमी तो बेचारा भला है परन्तु सब लोग जानते हैं कि अंग-भंग है ।"

मैंने कहा कि हरसिंह का हर्जाना तो मिलना चाहिए तो बोली—"जो मुझे लाया है, वह हरजाना भरेगा क्यों नहीं ? नहीं होगा, जमीन वेच कर भरेगा। अव मैं क्या करूं ?" उस की गोद में लड़का भी है। उस के आदमी का नाम-ठिकाना सव पता ले आया हूं। अदालत में हरजाने का दावा कर दे। औरत का अव क्या है, वहां वस गई। उस आदमी से उस का लड़का भी है। अब उसे गनेरसिंह की ही औरत समझ पर तेरा हरजाना तो मिलना चाहिए। तीन सौ कम भी तो नहीं होता।

हरसिंह ने सव वात ध्यान से सुन कर कहा—"देखूंगा महाराज !"

फसल का मौका था इसलिए हरसिंह चुप रहा। लोगों ने समझा, मन मार गया परन्तु हरसिंह माना नहीं था। उस ने अवसर देख कर अपने गांव के तीन-चार आदमियों को लिया और कटेरा पहुंचा।

गनेरसिंह ने कहा—"भाई मैं झगड़ा नहीं करता। तू अंग-भंग है। औरत अपनी खुशी से मेरे साथ आई है। पंचायत जो कहे, हरजाना भरने को तैयार हूं।"

हरसिंह ने सिर हिलाकर कहा—"मैं हजार रुपया भी हरजाना लेने को तैयार नहीं। मैं तो अपना लड़का लेने आया हूं।"

"तेरा लड़का ?" गनेरसिंह विस्मय से होंठ और आंखें फैलाये रह गया।

आखिर पंचायत बैठी। हरसिंह बच्चे को मांग रहा था।

पंचों ने कहा—"बच्चा तुम्हें कैसे दिला दें। औरत के तेरे घर से जाने के बरस भर बाद लड़का हुआ है। लड़का तेरा कैसे होगा ?……औरत तेरे साथ जाने को तैयार नहीं। कोई भैंस-बकरी तो है नहीं जो बांध कर भेज दें ! हां, तू हर्जाने का हकदार है।"

हरसिंह ने पंचों से न्याय मांगा—"पंचो, जब तक मेरा हर्जाना नहीं मिला, औरत मेरी रही। हर्जाना मिलने के बाद लड़का होता, तो मेरा नहीं था।"

पंचों ने कहा—"औरत तेरी थी, पर तेरे घर में तो नहीं थी।"

हरसिंह ने फिर दुहाई दी। उस ने जमीन पर लकीर खींच कर कहा—"पंचो, न्याय करो ! यह जमीन लकीर से इस पार मेरी और लकीर से उस पार गनेरसिंह की। मेरे खेत की ककड़ी की वेल फैल कर गनेरसिंह के खेत में चली गई। वोलो पंचो, ककड़ी किस की मानोगे ?……जिस की वेल उस की

ककड़ी·····जिस की औरत उस का बच्चा ! हरजाना देने से पहले औरत को गनेरसिंह की ढांटी मानते हो, तो बच्चा उस का ! मैं अपना लड़का लूंगा। लड़के की मां आती है, मेरे सिर-आंखों पर आये; नहीं आती तो उस का मन ! मैं हरजाने का एक पैसा मांगूं तो मेरे लिए गाय का खून ! पंचो, यह परमेश्वर का न्याय है, नहीं तो अंग्रेज बहादुर की अदालत है। पंच न्याय नहीं देंगे तो हरसिंह अंग्रेज की अदालत में जायेगा। मेरा घर-बार है, जमीन-जायदाद है, मैं लड़के के बिना मरूंगा ?·····मुझे पानी की अंजली कौन देगा ?"

पंचों ने एक-दूसरे की ओर देखा और स्वीकार कर लिया कि जब औरत हरसिंह की थी तो लड़का भी हरसिंह का है।

कुशली एक ओर बैठी थी। पंचों का फैसला सुना तो बच्चे को छाती से चिपटा कर चीख उठी—"मैं अपना बच्चा किसी को नहीं दूंगी।"

हरसिंह के स्वर में क्रोध नहीं था, धमकी नहीं थी, पंचायत का न्याय जीत लेने का अभिमान भी नहीं था। मुलायम शब्दों में उस ने कुशली को समझाया—"अरी भागवान, तेरा बच्चा कौन छीनता है तुझ से ? अपने घर चल। तू उस घर की मालकिन है !"

हरसिंह अपने एक बरस के उत्तराधिकारी को बड़े लाड़ और सन्तोष से गोद में उठाये दानपुर की ओर चला जा रहा था। कुशली उस के पीछे-पीछे चली आ रही थी, जैसे नई ब्याई गैया अपना बछड़ा उठाये ग्वाले के पीछे चली जाती है।

जाब्ते की कारवाई

मास्टर शर्मा नैतिक ढंग के आदमी हैं, जिसे अंग्रेजी में "कानशियेन्शस टाइप" कहते हैं। उन्होंने पुलिस और सार्वजनिक कार्य-विभाग (पी० डब्ल्यू० डी०) में अनेक सम्बन्धी होते हुए भी उन अवसरप्रद और कमाऊ महकमों को छोड़ कर मास्टरी का ही पेशा स्वीकार कर लिया।

शर्मा आमदनी कम होने पर भी सन्तुष्ट थे। अपने काम को उत्तरदायित्व से और बहुत हद तक अपना ही काम समझ कर पूरा करते थे। इन्टरमीडियेट कालेज के विद्यार्थी उन्हें अपना शासक अनुभव न कर सहायक समझते थे और उन का आदर करते थे। प्रिंसिपल साहब भी शर्मा की उत्तरदायी और मेहनती प्रकृति की प्रशंसा करते रहते पर इतनी नहीं कि शर्मा को अभिमान हो जाये और यथा-अवसर उस से स्वयं लाभ भी उठाते। जिम्मेवारी का काम शर्मा को सौंप कर वे निश्चिन्त हो सकते थे।

स्कूल-कालिजों में विद्यार्थियों के लिये एन० सी० सी० (सैनिक-शिक्षा) का कार्यक्रम जारी किया गया तो शर्मा जी के लिये एक और काम बढ़ गया। वे अपने स्कूल के सैनिक-शिक्षक भी बना दिये गये। जब तक उन्हें सैनिक शिक्षा दे सकने यानी अफसरी करने की शिक्षा पाने के लिये अपने स्कूल से छुट्टी के दिनों को सैनिक कैम्पों में बिताना पड़ता। इस के साथ ही अपने स्कूल में लड़कों को दी जाने वाली वर्दियों की देख-भाल और हिसाब-किताब का बोझ भी सम्भालना पड़ता।

गर्मियों की छुट्टियों के लिए स्कूल शनिवार से बन्द होने वाले थे। छुट्टी से पहले वर्दियों को गिन कर गोदाम में बन्द कर देना जरूरी था। वर्दियां गोदाम में बन्द करने से पहले शर्मा जी ने उन्हें धुलवाने के लिए स्कूल के धोबी

रमजान को दिलवा दिया था ।

रमजान वर्दियां समय पर लौटा कर न लाया तो शर्मा जी को चिन्ता हुई। छुट्टियां शनिवार से आरम्भ होने का आदेश था। शर्मा जी का घर देहात में था। पत्र द्वारा बहन का विवाह अगले सप्ताह निश्चित किये जाने के लिये अनुमति दे चुके थे।

शर्मा जी ने स्कूल के चपरासी को रमजान धोबी के घर भेज कर पता लिया। चपरासी खबर लाया कि धोबियों के मुहल्ले में चेचक फैली हुई है। रमजान के बच्चे और वह स्वयं भी चेचक में पड़ा है। वर्दियां धुली-धुलाई धोबी के घर पड़ी हैं परन्तु दे कौन जाये ?

यह समाचार पाकर शर्मा को दूसरी चिन्ता ने आ घेरा। चेचक के कीटाणुओं से दूषित यह वर्दियां स्कूल खुलने पर लड़कों को कैसे दी जायेंगी ? धोबी के यहां से ले आने पर इन वर्दियों को दवाई के पानी में उबलवा कर, दोबारा धुलवा कर रोग की छूत से मुक्त करना आवश्यक होगा। इस काम में तो हफ्ता-दस दिन लग जा सकते हैं। इतने दिन वे ठहर कैसे सकते थे ?

शर्मा जी ने सोचा, सब स्थिति प्रिंसिपल साहब के सामने रख देना ठीक होगा। प्रिंसिपल साहब छुट्टियों में भी स्कूल के समीप ही सरकारी बंगले में रहते हैं। उन के कहीं बाहर जाने की भी बात न थी। जायेंगे भी तो यह काम स्कूल के क्लर्क या चपरासियों को सौंप सकते हैं। आखिर जिम्मेवारी तो उन्हीं की है। कपड़ों को कीटाणु-मुक्त (डिसइन्फेक्ट) कराने में और धुलवाने में जो व्यय होगा, उस की मंजूरी भी तो प्रिंसिपल साहब ही दे सकते हैं।

शनिवार सुबह ही शर्मा जी प्रिंसिपल के बंगले पर पहुंचे। सम्पूर्ण स्थिति समझा कर अपनी विवशता प्रकट की कि अगले ही हफ्ते गांव में उन की बहिन का विवाह निश्चित है इसलिये उन का पीछे टिके रहना सम्भव नहीं।

प्रिंसिपल साहब अनुशासन की दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध हैं। शर्मा जी का लम्बा बयान सुन माथे पर त्योरियां चढ़ाकर मेज पर हाथ पटका और प्रश्न किया—"धोबी कपड़े नहीं ला सकता तो क्या स्कूल के चपरासियों से नहीं मंगाये जा सकते ?"

फिर मेज पर निश्चयात्मक घूंसा जमा कर उन्हों ने हुक्म दिया—"मैं आज दोपहर तक गोदाम की चाभी चाहता हूं। कपड़ों को ठीक से धुलवाने की जिम्मेवारी सैनिक-शिक्षक की है, प्रिंसिपल की नहीं। इस विषय में हम कुछ

सुनना नहीं चाहते। हम आज शाम पांच बजे की गाड़ी से मंसूरी जा रहे हैं। स्कूल का सब सामान गोदाम में पहुंच कर हमें चाबियां तीन बजे तक मिल जानी चाहियें और रजिस्टर में सब अंदराजों पर हमारे दस्तखत हो जाने चाहिये।"

शर्मा स्तब्ध रह कर प्रिंसिपल साहब की ओर देखते रह गये। उन्हें चुप खड़े देख कर प्रिंसिपल साहब के माथे पर त्योरियां गहरी हो गयीं। उन्हों ने प्रश्न किया—"आप ने हमारी बात नहीं सुनी ?"

"जनाब, मैंने सुन लिया है।" जिम्मेवारी के बोझ से शर्मा की जिह्वा थुथला गई, "प····परन्तु·····"

"सुन लिया है तो परन्तु क्या ?" प्रिंसिपल साहब मानों शर्मा की मूढ़ता पर झुंझला उठे।

"परन्तु वर्दियां डिसइन्फेक्ट होनी चाहियें !" शर्मा ने साहस किया।

"हूं", प्रिंसिपल साहब ने शर्मा की ओर घूर कर देखा, "डिसइन्फेक्ट होनी चाहियें ?·····हम क्या कह रहे हैं ? आज तीन बजे से पहले वर्दियां डिसइन्फेक्ट हो सकती हैं ? वर्दियों के डिसइन्फेक्ट होने का खर्च किस मद में जायेगा, यह आप बता सकते हैं ?·····इस के लिये पहले कोई मंजूरी है ? इन्सपेक्टर के दफ्तर से यह मंजूरी आज आ सकती है ? मंजूरी आने तक वर्दियां कहां रखी जायेंगी ?·····जाड़े से छुट्टी के दिनों में वर्दियां कहां रखी जानी चाहियें ? ·····क्या उन्हें गोदाम के बाहर छोड़ा जा सकता है ?" प्रिंसिपल साहब शर्मा की ओर घूरते रहे।

"परन्तु·····!" शर्मा ने फिर साहस किया।

"आप बहुत परन्तु-वरन्तु करते हैं। हम हुक्म दे चुके हैं।" प्रिन्सिपल साहब शर्मा को खड़े छोड़ भीतर चले गये।

शर्मा प्रिंसिपल के दफ्तर से लौटे तो उन की समस्या हल हो चुकी थी। प्रिंसिपल साहब का हुक्म साफ था परन्तु वर्दियों को रमजान धोबी के घर से मंगा कर उसी अवस्था में गोदाम में बन्द कर देने और कालेज खुलने पर विद्यार्थियों में बांट देने के परिणाम की कल्पना कर उन का सिर चकरा रहा था। उन्हों ने अपने मन को समझाया कि मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका। मेरा फर्ज था प्रिंसिपल साहब के सामने स्थिति रख देना, मैंने वह कर दिया। मन में ऐसी सब दलीलें सोच लेने पर भी मन न माना पर वह कर भी क्या सकते थे !

स्कूल का चपरासी रमजान धोवी के घर से वर्दियां ले आया। वर्दियां गिन कर गोदाम में रख दी गईं और चाबियां प्रिन्सिपल साहब के सुपुर्द कर दी गईं। शर्मा को वर्दियों के इन्चार्ज की हैसियत से रजिस्टर में लिखना पड़ा—'पूरी वर्दियां सही हालत में मेरे सामने गोदाम में बन्द कर दी गईं हैं।' और इस विवरण पर दस्तखत भी करने पड़े। उन के दस्तखत के नीचे दूसरी स्याही से प्रिंसिपल साहब के भी दस्तखत हो गये।

छुट्टियों के ढाई महीने में शर्मा जी को कई बार वर्दियां यों ही बन्द कर देने के परिणाम में भयंकर रोग के फैलने की आशंका का ध्यान आया। तब वे मन को समझा कर रह गये कि छुट्टियां समाप्त होने पर कुछ न कुछ हो जायगा।

जुलाई के दूसरे सप्ताह में कालिज खुल गया। सत्र के आरम्भ में ही प्रान्त की सब शिक्षा-संस्थाओं के सैनिक-शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों को एक संयुक्त कैम्प में भेजने का आदेश आया था। शर्मा जी को सैनिक शिक्षा के इन्चार्ज की हैसियत से प्रिन्सिपल साहब का निर्देश मिला कि कालिज के विद्यार्थियों को भी कैम्प में सम्मिलित होना होगा।

प्रिन्सिपल साहब ने गोदाम की चाबी शर्मा जी को सौंप हाकिमाना अंदाज में आदेश दिया—"शिक्षा-मन्त्री कैम्प का निरीक्षण करेंगे। हमारे विद्यार्थियों की तैयारी और वर्दियों के बारे में किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नहीं होना चाहिये।"

शर्मा जी ने चाबियां हाथ में लेकर झिझकते हुये कहा —"परन्तु.....।"

"परन्तु क्या ?" प्रिंसिपल साहब ने शर्मा जी की ओर आंखें उठा कर पूछा।

"वर्दियां डिसइन्फेक्ट नहीं की गयीं हैं।"

"क्या मतलब है ? लड़के कैम्प में न जायें ?"

"हुजूर, लड़कों को वर्दियां देने की जिम्मेवारी मैं नहीं लेना चाहता। वे डिसइन्फेक्ट नहीं की गई हैं।" शर्मा ने साहस किया।

प्रिन्सिपल साहब ने बिस्मय से आंखें फैला कर शर्मा की ओर देखा। उन के होंठ गम्भीरता से दब गये।

उन्होंने मेज पर पड़ी घंटी को दबाया। चपरासी के आने पर उन्होंने हुक्म दिया—"क्लर्क बाबू को बोलो गोदाम का रजिस्टर लायें।"

प्रिंसिपल साहब ने शर्मा जी के सामने खुला रजिस्टर रख कलम की पूंछ से शर्मा जी के लिखे नोट की ओर संकेत कर दिया—"सब वर्दियां गिन कर

ठीक हालत में मेरे सामने वन्द की गई ।" और फिर शर्मा जी के दस्तखतों की ओर संकेत कर प्रश्न किया, "यह किस के दस्तखत हैं ?"

शर्मा ने प्रिंसिपल साहव का अभिप्राय समझ कर भी साहस किया—"हुजूर··· मैंने वास्तविक अवस्था आप के सामने रख दी थी ।"

प्रिंसिपल साहव झुंझला उठे—"मैं पूछता हूं रजिस्टर में क्या लिखा है ?"

प्रिंसिपल ने रजिस्टर धमाके से वन्द कर दिया, वोले—"रजिस्टर में जो लिखा है, वही मैं जानता हूं । मेरे पास कल्पनाओं के लिये समय नहीं है ।" और हुक्म दिया, "विद्यार्थी आज शाम कैम्प के लिये रवाना होंगे । उन्हें वर्दियां तत्काल मिलनी चाहियें । अगर यह नहीं होता तो आप लिख कर मुझे अपनी सफाई दीजिये कि रजिस्टर पर गलत नोट कैसे और क्यों लिख गया ?"

शर्मा जी ने फिर साहस किया—"परन्तु····· ।"

"फिर परन्तु·····।" प्रिंसिपल साहव झुंझला उठे, "हम जवानी वातचीत नहीं चाहते । आप का लिखा मौजूद है । अब जो कहना है, वह भी लिख कर दीजिये । हमारा हुक्म आपने सुन लिया !"

विद्यार्थियों को वर्दियां देते हुये शर्मा जी के हाथ कांप रहे थे और कलेजा डूब रहा था परन्तु लाचार थे । अपने मन को समझा देना चाहते थे कि उन्होंने स्थिति प्रिंसिपल साहव के सामने रख कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है । परन्तु सन्तोष न हुआ ।

कालेज के विद्यार्थियों को कैम्प पर गये एक सप्ताह ही वीता था, समाचार आया कि कैम्प में चेचक फूट निकली है और उन के कालेज के दो विद्यार्थियों की मृत्यु हो गई है ।

कुछ दिन वाद शिक्षा विभाग के प्रान्तीय कार्यालय से इस वारे में जांच पड़ताल हुई । पूछा गया कि कैम्प में ऐसी वीमारी फैलने के क्या कारण हो सकते हैं । कालेज इस विषय पर क्या प्रकाश डाल सकता है ?

प्रिंसिपल साहव ने फिर शर्मा जी को तलव किया और शिक्षा-विभाग के प्रान्तीय दफ्तर से आया पत्र उन के सामने रख कर प्रश्न किया—"इस वारे में आपका क्या जवाव है ?"

शर्मा प्रिंसिपल साहव की ओर देखते रह गये ।

"क्या आप ने सुना नहीं ?" कड़े स्वर में प्रिंसिपल साहव ने प्रश्न किया ।

"मैंने तो इस विषय में सव स्थिति उसी समय आप के सामने रख दी थी ।"

शर्मा जी ने उत्तर दिया।

दोनों कोहनियां मेज पर जमा कर और हाथों के पंजों को मजबूती से आपस में फंसा कर प्रिंसिपल साहब ने शर्मा की आंखों में देख कर प्रश्न किया—"स्थिति हमारे सामने रख दी थी! ·····इन वर्दियों की सफाई के लिये जिम्मेवार कौन था ?·····वर्दियां गोदाम में बन्द करते समय आपने गोदाम के रजिस्टर में क्या नोट लिखा था ?"

शर्मा जी कुर्सी से उठ खड़े हुये। उन के चेहरे पर विचित्र मुद्रा दिखाई दी, जैसे कि कुत्तों के भय से भागती बिल्ली का भाव रास्ता न पाने पर हो जाता है।

शर्मा जी ने जरा ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"वह नोट मुझ से लिखाया गया था। विद्यार्थियों को वर्दियां बांटी जाने से पहले भी मैंने चेतावनी दे दी थी। अब इस बारे में मुझे जो सफाई देनी है, लिख कर पेश कर दूंगा।"

"हमें मालूम तो हो आप क्या लिख कर देंगे ?" प्रिंसिपल साहब का स्वर नरम हुआ, "आप का उत्तर हमारी ही मार्फत जायेगा। हमें उस नोट पर भी राय लिखनी होगी।"

शर्मा संकट का सामना करने की दृढ़ता से बोले—"हुजूर पूरी घटना आप को मालूम है। मैं और क्या लिख सकता हूं!"

"आप बैठिये," प्रिंसिपल साहब ने शर्मा को बैठने का संकेत किया, "अपनी जिम्मेवारी को समझिये और बात में जाब्ते का ख्याल रखिये। सरकारी काम कहा-सुनी और अफवाहों के आधार पर नहीं होते, लिखे हुये हुक्मों और नियमों के अनुसार चलते हैं। आप को अनुभव नहीं है, अपना नुकसान न कर बैठियेगा।·····आपने अभी काम शुरू किया है। पूरा भविष्य आप के सामने है। आप परिश्रमी और सदाशय नवयुवक है परन्तु सब से आवश्यक चीज है, अनुभव! जाब्ते की जानकारी!·····समझ रहे हैं आप ?" प्रिंसिपल साहब प्रश्नात्मक दृष्टि से शर्मा की आंखों में देखते रहे।

प्रिंसिपल साहब शर्मा को स्वीकृति में सिर झुकाते देख बोले बोले—"संस्था के प्रधान व्यक्ति काम को अपने हाथ से नहीं करते। उन का काम मातहतों के काम की निगरानी होता है। इस घटना के ब्योरे से मेरा क्या सम्बन्ध ? मेरा काम है, यह देखना कि आपने अपना कर्तव्य ठीक से निबाहा है और यह कि आप उत्तर देने में किसी गलती से झंझट में न पड़ जायें। उत्तर ऐसा होना चाहिये जो हमारे रिकार्ड से सही प्रमाणित हो।·····समझते हैं आप ? यानी

उत्तर जाब्ते के अनुसार होना चाहिये। हमारा रिकार्ड और रजिस्टर कहता है कि आपने सब काम जाब्ते से किया है।.....बीमारियां आकस्मिक घटना के रूप में भी होती हैं। हमारे रिकार्ड में उस का कोई कारण मौजूद नहीं है।"

प्रिंसिपल साहब को शर्मा जी के चेहरे पर नैतिक उत्पीड़न के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। समवेदना में अपने शरीर को कुर्सी पर ढीला छोड़ कर वे और भी कोमल स्वर में बोले—"आपने एम० एस० सी० किस वर्ष पास किया था ?"

"सन् १९४० में।"

"आप तो फर्स्ट डिविजनर हैं।...शायद रिसर्च भी तो किया है आपने ?"

"जी हां।"

"तो फिर बोर्ड के कालिज में अपना भविष्य क्यों खराब कर रहे हैं ? आप यूनिवर्सिटी में स्थान के लिये क्यों कोशिश नहीं करते ? इस समय डिग्री कालिज के विज्ञान विभाग में जगह है। मैं प्रो० कामगार को लिख सकता हूं। आप इस के लिये आवेदन पत्र क्यों नहीं देते ? मैं इस बात का प्रमाण पत्र दे सकता हूं कि आप का शिक्षण और प्रबन्ध दोनों ही कामों का रिकार्ड बहुत अच्छा है। आप आवेदन पत्र लिखिये। आप के काम का रिकार्ड बेदाग है लेकिन आप इस घटना का उत्तर जाब्ते के खिलाफ लिख कर अपना रिकार्ड और भविष्य खराब करना चाहें तो दूसरी बात है। समझ गये आप ?"

× × ×

शर्मा के चेहरे से उत्तेजना का भाव दूर हो गया। प्रिंसिपल साहब को विश्वास हो गया कि शर्मा उन की बात समझ गये हैं। उन का खयाल गलत भी न था।

शर्मा की नैतिक भावना इस घटना से भयंकर चोट खा गई थी। वे बेईमानी के लिए विवश कर देने वाली पराधीनता से निकल, यूनिवर्सिटी की स्वतन्त्र नौकरी के लिए छटपटा रहे थे परन्तु उस के लिए भी जाब्ते से ही व्यवहार करना आवश्यक था।

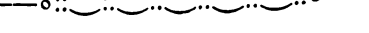

अगर हो जाता ?

इस पहाड़ी जिले में अनेक छोटे-छोटे नदी, नाले और खड्ड हैं। सरकार जानना चाहती थी कि स्थान-स्थान पर बांध लगा कर मछलियों का व्यवसाय बढ़ा सकने की क्या सम्भावना है ? इसी बात का निरीक्षण करने की विशेष ड्यूटी पर इंजीनियर राजनाथ इस पहाड़ी नगर में टिका हुआ था।

नदियों को वश में कर लेना हंसी-खेल नहीं है। उन की पोषक और ध्वंसक, दोनों ही शक्तियां महान् हैं इसीलिये हमारे पूर्वज नदियों को मस्तक नवा कर, उन की पूजा करके उन्हें प्रसन्न रखने का विश्वास करते रहते थे।

जाड़े की ऋतु में जब पहाड़ की चोटियों पर बरफ कम पिघलती है, बर्फानी नदियां और नाले सिकुड़ने लगते हैं; कुछ अन्तर्धान ही हो जाते हैं। गरमियों में ऐसे नदी-नाले फिर प्रकट हो जाते हैं और सोतों से फूटने वाले लोप हो जाते हैं। बरसात में इन नदी-नालों की दुर्द्धर्ष शक्ति सहस्रों गुणा बढ़ जाती है। पुलों और बांधों की तो बात क्या, ये नदी-नाले अपनी शक्ति के मद में पहाड़ों तक की पीठ पर आघात कर उन्हें गिरा देना चाहते हैं। इसलिये इन नदियों के व्यवहार में हस्तक्षेप करने से पहले इन के मिजाज को सभी ऋतुओं में पहचान लेना आवश्यक होता है।

ओवरसियर लोग कुछ-कुछ दिन बाद जा कर, खास-खास स्थानों पर नाप-जोख कर के अपनी रिपोर्टें नाथ साहब के पास भेजते रहते थे। इंजीनियर नाथ इन सूचनाओं के आधार पर योजना के लिये भूमिका तैयार कर रहे थे। विश्वस्त रूप से पूर्ण योजना पूरी बरसात की नाप-जोख के बाद ही बन सकती थी। नाथ साहब वर्षा ऋतु को उस के निश्चित काल से पहले समाप्त नहीं कर सकते थे। उन्हें परेशानी भी क्या थी ? तनखाह जैसी इलाहाबाद, लखनऊ में मिलती,

वैसी ही यहां मिल रही थी; भत्ता अलग और गरमियों में पहाड़ पर रहने का अवसर ।

परन्तु गरमियों में पहाड़ पर रहने के अवसर से क्या मतलब ? एक पहाड़ शिमला, मंसूरी और नैनीताल हैं, जहां तफरीह का जश्न जमता है । लोग जी भर मौज करके अपने-अपने कामों पर लौट जाते हैं । नाथ भी पहाड़ पर थे, परन्तु वैसे पहाड़ पर नहीं । इस पहाड़ को लोग प्रायः अवकाश प्राप्त (रिटायर्ड) लोगों का पहाड़ कहते हैं । गलत भी नहीं कहते । रेलवे स्टेशन से पूरे दिन का रास्ता बस में तय कर के केवल रविवार की तफरीह के लिये कोई यहां कैसे आये ? तफरीह के लिए यहां है भी क्या ? पहाड़ की रीढ़ पर बसी बस्ती से दृष्टि तरल हवा पर तैरती हुई दूसरी ओर पहाड़ियों की रीढ़ों पर चिर-विश्राम करती वन-राशियों को देख सकती है । आकाश में समीप ही और प्रायः सड़क से नीचे घाटी में भी, बादलों के मचलने में धूप-छाया का खेल देखा जा सकता । संध्या समय वृत्ताकार, एक के पीछे एक झांकती हुई पहाड़ियों की प्राचीरों के ऊपर अनेक रंग की पिघली हुई आग की होली या स्थिर आतिशबाजी का खेल देखा जा सकता है । वर्षा लग जाने पर अनवरत झड़ियां । कभी चारों ओर सिमटी घाटियों में धुनी हुई रुई के से बादलों का उमड़ आना, जो अपने पर्दों में सब कुछ छिपा कर, अनन्त का सा दृश्य बना देते हैं । कभी-कभी 'त्रिशूल' और 'चौखम्भा' की चोटियों का बादलों के घूंघट से दर्शक की उत्सुक प्रतीक्षा पर निर्दय कटाक्ष कर मुस्करा देना । बस, यह चोटियां ही तो इस पहाड़ी नगर में मुस्कराती हैं; आदमी नहीं मुस्कराते ।

बादलों, पहाड़ों और वन-राशियों को आदमी कहां तक देखता रहेगा ! आदमी तो आदमी को देखना चाहता है । यहां एक बाजार है, बहुत लम्बा-सा, चकले पत्थरों से मढ़ा हुआ; जहां दूर पहाड़ी देहात से आये पहाड़ी अपनी जरूरत का सौदा जल्दी-जल्दी खरीद कर रात पड़ने से पहले अपने घर पहुंच जाना चाहते हैं । कभी-कभी पल्टन से छुट्टी पर आये सिपाही देहात से अपनी बहू को साथ ला कर, उस की पसन्द से घांघरे का कपड़ा, नमक, तम्बाकू और गुड़ खरीदने या तांबे की गागर का शौक पूरा करने के लिये इस बाजार में घूमते दिखाई देते हैं परन्तु वे भी काइयां दुकानदार द्वारा ठगे जाने के भय से आशंकित और जल्दी ही गांव लौट जाने के लिये चौकस । इस बाजार के दोनों ओर फैली हुई ढलवानें कई मुहल्लों और बंगलों का बोझ कन्धों और कमर पर उठाये हैं ।

नीचे है साफ-सुथरी माल रोड, नगर का अंग्रेजी प्रभाव से बसा आधुनिक भाग। सड़क के किनारे कुछ दफ्तर हैं और आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली कुछ दूकानें।

इंजीनियर राजनाथ का आना-जाना अधिकतर इसी सड़क पर होता है। लोग प्रायः ही बिना क्रीज की पतलून पहने, देशी टोपी कानों तक दबाये और छतरी को छड़ी की तरह टेकते जल्दी-जल्दी चलते दिखाई देते हैं। स्कूल से आते-जाते लड़के-लड़कियां भी दिखाई देते हैं या दिखाई देती हैं, सिरों पर घास और ईंधन के बड़े-बड़े बोझ उठाये निम्नतम श्रेणी की स्त्रियां, जिन के चेहरे सिर पर लदे चारों ओर झुके बोझ के भीतर छिपे रहते हैं और जिन्हें अपने शरीर की अपेक्षा बोझ का ही ध्यान अधिक रहता है। उन की ओर नाथ क्या देखे ? जिस धन को स्वामी नहीं संभालता, उस की ओर चोरों की दृष्टि भी नहीं जाती। भले घरों की स्त्रियां यहां प्रायः बाहर नहीं निकलतीं। निकलती हैं तो सन् १९५० में भी आस्तीन से कलाई तक बाहें ढके, कमर पर साड़ी का अनावश्यक घेर बना कर शरीर की आकृति को छिपाये, निगाह को सड़क पर गड़ाये चली जाती हैं; जैसे चांदी की खोई हुई छोटी चवन्नी ढूंढ़ रही हों।

इस नगर का जलवायु स्वास्थ्य के लिये अच्छा समझा जाता है परन्तु स्वास्थ्य का भी प्रयोजन होता है। स्वास्थ्य का प्रयोजन केवल नदियों और खड्डों में जल की गहराई, चौड़ाई और वेग नाप कर उस में बहने वाले जल की प्रवाह-शक्ति का हिसाब लगा लेना ही नहीं है। यह सब तो किया जाता है जीवित रहने के लिये। जीवित रह कर कुछ और भी किया जाता है, कुछ और भी कर पाने की इच्छा होती है। नाथ का सम्बन्ध भौतिक जगत से है। अज्ञेय जगत की मीमांसा और पार्थिव से निवृत्ति द्वारा शांति की प्राप्ति में उस की आस्था नहीं है। वह जवानी के उद्दाम उच्छ्वास से कुलांचे भरने के लिये उतावला न सही, परन्तु वह जीवन से हाथ भी नहीं धो बैठा है। देश में अपने मकान से आये उसे चार मास से अधिक हो गये हैं। कभी-कभी वह स्त्री का चेहरा देखने और उस का स्वर और उस की हंसी सुन पाने की इच्छा-सी अनुभव करने लगता है।.....पहाड़ी प्रदेश के विपुल प्राकृतिक सौन्दर्य में वह तो है नहीं। प्राकृतिक सौन्दर्य उसे अनावश्यक वर्षा और नदी में व्यर्थ बहते जल की भांति निष्प्रयोजन जान पड़ने लगता है।

ऐसी अवस्था में नाथ अपने दिमाग पर जमती काई को दूर करने के लिये

इस नगर के एकमात्र सिनेमा घर में जा बैठता है। सिनेमा का आकर्षण उस ने पहले कभी इतना अनुभव नहीं किया। फिल्मों के अस्वाभाविक चित्रण से उसे विरक्ति ही थी, जैसे गवाही में असह्य झूठ सुन कर कोई जज खीज उठे। अब फिल्मों में उसे वही दिखाई देने लगा जिस का कि नित्य जीवन में अभाव था। अब नाथ को फिल्मों से उबकान नहीं होती। वह उन्हें ऐसे निगल जाता जैसे बिना नमक का खाना खा कर चुटकी भर चूरण फांक लिया जाय। वह नयी-नयी फिल्मों की प्रतीक्षा करने लगा और प्रत्येक फिल्म को पहले ही 'शो' में देखने लगा।

× × ×

इस नगर के अनुरूप ही यहां का सिनेमा घर भी है; उदास और ऊंघता-सा। उस की दीवारों पर किसी समय किया गया हरा या नीला रोगन अब समय और सीली हवा के प्रभाव से खाकी आसमानी सा हो गया है। डीजल के इंजन से डायनेमो और डायनेमो से बिजली की मोटर चला कर फिल्में दिखाई जाती हैं। कभी-कभी मशीन गड़बड़ा जाती है तो आठ-आठ, दस-दस मिनट तक फिल्म रुक जाती है और कुछ मिनट के लिये रोशनी होती रहती है। टीन की ढालू छत के नीचे चटाई का समतल अस्तर दे देने से, शोभा में चाहे वृद्धि न हुई हो, आवाज गूंज नहीं पाती। सब से ऊंचे यानी दो रुपये दस आने के दर्जे में कुछ गद्दीदार बेंचें कोच के रूप में, कुछ दफ्तरी कुर्सियां और कुछ आराम कुर्सियां पड़ी रहती हैं। इस दर्जे के आगे, अगल-बगल गैलरी पर बिना बांह की कुर्सियां ऊंचे दर्जे की ओर पीठ करके, आगे-पीछे रख कर, मध्य श्रेणी का टिकट खरीदने वाली स्त्रियों के लिये स्थान बना दिया गया है। इस सिनेमा में स्त्रियों और पुरुषों के पृथक-पृथक बैठने का विधान अब भी चल रहा है। स्त्रियों की पीठ पीछे बैठने वाले ऊंची श्रेणी के दर्शकों की निगाह से महिलाओं के बचाव के लिये पद टांगने की लोहे की छड़ें भी लगी हैं। छड़ों में पीतल के छल्ले भी झूल रहे है। पर्दे एक बार फट जाने के बाद फिर लगाये नहीं गये। शायद इस बीच में पर्दे का रिवाज कुछ कम हो गया।

इंजीनियर नाथ इस सिनेमा घर में आता है तो सब से आगे, बीच की आराम कुर्सी पर बैठ कर पांव फैला लेता है और सिगरेट सुलगाये, फिल्म की

कहानी की उपेक्षा कर, केवल चेहरे देखता हुआ गाना सुनता है। सिनेमा को वह मुजरे और सरकस के मेल के रूप में देखता है। जितनी देर फिल्म रुक कर रोशनी रहती है, अगल-बगल गैलरियों पर नजर जाती ही है परन्तु उस की आंखों को कभी कोई उत्साह वहां से नहीं मिला।

उस रोज जब वह 'तूफान' फिल्म देखने गया तो गैलरी में सब से इधर की कुर्सी पर उसे एक युवा लड़की या युवती दिखाई दी। कोहनी से खूब ऊंची आस्तीन का बहुत चुस्त ब्लाउज पहने। ब्लाउज ऐसा चुस्त कि केवल शरीर के रंग को छिपा कर आकृति को और भी उभारे। आकृति के उभार और दबाव को और चोखा कर देने के लिये ब्लाउज में चोली के भाग का रंग शोख सुर्ख और शेष कपड़ा शरीर के ही रंग का। साड़ी भी शरीर को छिपा देने के लिये लहंगे की तरह नहीं, बल्कि जैसे बोतल पर महीन कागज कस कर लपेट दिया गया हो।

मशीन सिंगल चल रही थी। बार-बार रोशनी होती और नाथ की निगाह उस ओर जाती। दिखाई पड़ रही थी केवल बांह, पीठ पर साड़ी और ब्लाउज के अन्तर से रीढ़ की गहराई और चेहरे का बायीं ओर का भाग ही, परन्तु इतने से क्या शेष का अनुमान नहीं हो सकता ! नाथ का ध्यान फिल्म की ओर रहा ही नहीं।

रोशनी होने पर वह युवती भी मुड़ कर अपने साथ बैठी बहुत कुछ अपने ही जैसी वेश-भूषा की सहेली से बात करती। नाथ को उस की आंखें और दांत भी दिखाई दिये; कितने सजीव ! औचित्य का खयाल कर जितना देखा जा सकता था, नाथ देखता रहा और अनुमान करता रहा—आयु ?···विवाहित है ? ···हो भी तो···!

फिल्म समाप्त हो गई। नाथ बाहर आया। उस ने देखा वे दोनों सड़क पर आयीं और एक मिनट बात करने के बाद 'उस' ने मुस्कान में मोती से दांत चमका कर अपनी सहेली को 'टा-टा' कर दिया और माल रोड पर दक्खिन की ओर चल दी। नाथ को सहसा खयाल आया—फिर कैसे देख सकेगा ? जैसे भीड़ में खो गया कुत्ता मालिक को पा जाने पर नजर से ओझल नहीं होने देना चाहता। नाथ चाव की पगलाहट में वह कर बैठा जो उसे नहीं करना चाहिए था और जिस बात की उस से आशा नहीं की जा सकती थी। वह उस के पीछे-पीछे चल दिया।

हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी, ऐसी कि छतरी होने पर भी बांह से लटकी ही रह सकती है। रात के दस बजे के लगभग सड़क सुनसान हो चुकी थी। बिरला ही कोई कहीं अटका रह गया व्यक्ति आ-जा रहा था। दूर-दूर खड़े खम्भों से भी सड़क पर बिजली की रोशनी यथेष्ट थी। बिजली की बत्ती के नीचे से गुजरते समय उस सुडौल शरीर की, चलते समय मांसपेशियों की गति वस्त्रों से झलक जाती थी। नाथ सीली सर्दी में उस शरीर की ऊष्मा के स्पर्श के लिये, उस शरीर को अपनी बांहों में पाने के लिये एक ऊष्ण बेचैनी में पीछे-पीछे चला जा रहा था।

सड़क पर हलकी चढ़ाई आरम्भ होने पर नाथ का श्वास वेग से चलने लगा। उसे आशंका होने लगी, इस शब्द से वे पीछे घूम कर न देख लें। कुछ दूर चढ़ाई पर चढ़ते-चढ़ते वे सहसा सड़क के किनारे से उठती सीढ़ियों पर चढ़, एक बड़ी दीवार में बने फाटक के भीतर जा छिपी।

सड़क पार सामने ही खम्भे पर लगी बिजली की रोशनी में नाथ ने फाटक के समीप बोर्ड पर पढ़ा—'नागरिक लड़कियों का स्कूल'। चढ़ाई चढ़ने की थकावट के बाद, सड़क सूनी होने के कारण नाथ को उन सीढ़ियों पर बैठ जाने में कुछ संकोच नहीं हुआ। जिन सीढ़ियों पर सैंडिल रख कर 'वह' अभी चढ़ गयी है, उन पर बैठ जाना नाथ को अच्छा ही लगा; जैसे उसी के कदमों में बैठ गया हो। यह अपने मन को ठगना-भर था, वह तो पहुंच के बाहर जा चुकी थी।

नाथ ने बेबसी की सांस लेकर सोचा, वह कर ही क्या सकता था ? उस से बात करता तो क्या और किस बहाने ? सहसा उसे अपने कुछ जिन्दादिल मित्रों का साहस याद आ गया। वे आगे बढ़कर कह सकते थे—'फुहार पड़ रही है। यह छतरी आप ले लीजिये।' और फिर छतरी वापस लेने जाने से परिचय का अच्छा-खासा आरम्भ; या कोई कल्पित नाम लेकर, मिस क्लीमेंट ही सही, पूछा जा सकता था—'आप मिस क्लीमेंट को जानती हैं ! ....ओह, शायद वे आजकल यहां नहीं हैं। पहले यहां स्कूल में पढ़ाती थीं।' या रहने लायक स्थान बताने के लिये सहायता की प्रार्थना की जा सकती थी; बात आरम्भ होने पर ही बात निकलती है।

नाथ अवसर चूकने की अपनी कायरता के लिये पछता रहा था और सूनी सड़क के किनारे सीढ़ियों पर बैठा अपनी कल्पना में उस सुडौल-छरहरे शरीर

को विना श्रम की चाल से भीगी सड़क पर बढ़ते जाते देख रहा था। शरीर की आकृति से चिपके शरीर के रंग के ब्लाउज पर दूसरे रंग की चोली, जो शरीर के आकर्षण को छिपाने के लिये नहीं बल्कि पुकारने के लिये लगाई गयी थी और बांह की लपेट में आ सकने योग्य कमर के नीचे पुष्ट जांघों का सरल गति से अलग-अलग कदम उठाते जाना···। नाथ को पश्चाताप हो रहा था, वह क्यों चूक गया !

साहस और दृढ़ निश्चय से उस ने सोचा—अभी न सही; जगह तो देख ही ली है। स्कूल की अध्यापिका है। उस ने अंग्रेजी में सोचा—अध्यापिका ही बनने के लिए कोई स्त्री पैदा नहीं होती। मैं चाहूंगा तो यह होगा। जो भी आवश्यक होगा मैं करूंगा। उसे इक्कीस वर्ष से शनैः-शनैः संचित अपनी बैंक की जमा का ख्याल आया। सड़क पर दिखाई देते, ब्लाउज और साड़ी में लिपटे दुर्दमनीय आकर्षण को बांहों में ले पाने के अवसर के लिये, वह सब बाजी पर लगा देने के लिये तैयार हो गया।

नाथ फुहार में सीढ़ियों पर बैठा, कल्पना में खो गया। उस की आंखों के सम्मुख फैली फुहार से भीगी सड़क अदृश्य हो गयी। केवल वह छरहरा और सुडौल शरीर ही दिखाई देने लगा। जीवन के समान ही कल्पना का भी गुण गति है। कुछ देर बाद नाथ उस शरीर को अपनी बांहों में अनुभव करने लगा, एक छोटा निराला मकान, वर्षों का सहवास। उस छरहरे सुडौल, मस्तानी चाल से चलते शरीर के साथ ही जांघ के साथ लटकती सुन्दर बांह; हाथ की उंगली को थामे एक सुन्दर बालक; बालक का घुंघराले केशों से भरा शिर; कोमल गोल गुदगुदी पिंडलियां उसे दिखाई देने लगीं।

नाथ कल्पना में सन्तोष की पूर्णता अनुभव कर रहा था—यही सौन्दर्य की पूर्णता और सफलता है कि वह सौन्दर्य की सृष्टि भी कर सके।···उस पेड़ का सौन्दर्य क्या जो फल नहीं देता ! नाथ की कल्पना और आगे बढ़ी—इस सौंदर्य की रक्षा के लिये छत्र-छाया के रूप में रक्षक, एक सबल बांह, उस की अपनी बांह।

मन में गर्मी लिये उस सीली सर्दी में ठंडी सीढ़ियों पर बैठे रहना असुविधाजनक होने लगा। उस की कल्पना ठिठक गयी।···नहीं, उस की बांह; नहीं हो सकती।·····यह वह नहीं कर सकेगा।·····जिम्मेदारी को एक जगह तोड़ कर दूसरी जगह कैसे निभाया जा सकता है·····! उस की सामाजिक

स्थिति ! उस की आयु के विचार से भी·····!

तो·····?

उस का विवेक जाग उठा। वह अपने से ही तर्क करने लगा, फूलों से लदी डाल को केवल पांव तले कुचल डालने के लिये तोड़ लिया जाये·····! उस में लगने वाले फलों की सम्भावना समाप्त कर, डाल को केवल एक दिन फूलदान में रखने के लिये तोड़ लिया जाये·····? उस का मन कड़वा हो गया; अच्छा ही हुआ, वह बोल न सका। वह अपनी प्रतारणा करने के लिये फुहार से भीगी सड़क पर अपनी परछाईं को अपने ही पांव से कुचलता अपने निवास-स्थान की ओर लौट गया।

परन्तु इतने से अपने भटकाव के प्रति नाथ के मन की ग्लानि समाप्त नहीं हो गई। वह टाल्सटाय और गांधी के विचारों से सहमत है। मन में आये पाप से मुक्ति का एक उपाय उस ने पढ़ा है—मन में आये कुविचारों को साहस से कह डालना·····।

एक बरसाती सांझ जब मकान से निकलना कठिन था, उस ने पूरी बात लिख डाली और सच्ची कहानियां प्रकाशित करने वाली एक पत्रिका में भेज दी। उस की कहानी पत्रिका में छप भी गई।

× × ×

इस छोटे से नगर में लड़कियों के स्कूल की अध्यापिकाओं का जीवन शेष नागरिकों के जीवन की भांति ही या उस से भी कुछ अधिक एक रस और घटना-शून्य रहता है। रविवार का दिन सिर और कपड़े धोने में या नगर में किसी परिचित परिवार में सहेली से मिल आने में चला जाता है। ईसाई अध्यापिकायें अलबत्ता सुबह गिरजाघर जा कर ईसाई समाज में मिल-जुल सकती हैं और इस महंगी के जमाने में बिना अंडों के केक बनाने के नुसखे और पुरानी साड़ियों को नयी-सी दिखा सकने के तरीकों पर विचार कर सकती हैं। शेष पढ़ाई के दिनों में दिन भर लड़कियों को पढ़ाने के बाद सांझ को स्वेटर-मोजे बुनते हुये अपने भविष्य पर विचार कर, आशा-निराशा की उधेड़-बुन करने के अलावा कहानियों की पत्रिका पढ़ कर दिल हल्का कर सकती हैं। दूसरा उपाय ही क्या है ?

मिस सविता पिछले दिन कुछ बुनने के लिये ऊन लेने बाजार गई थी तो उस मास की 'सच्ची कहानियां' भी लेती आई थी। दिन भर लड़कियों को उत्तर-भारत की पर्वत-श्रेणियों के नाम रटाने और अन्त में जहांगीर के शासन-काल में नूरजहां के प्रभाव का वर्णन करने के बाद, थक गई थी। अपने कमरे में जा चारपायी पर लेट गयी और 'सच्ची कहानियां' के पन्ने पलटने लगी।

एक कहानी का शीर्षक था 'अगर हो जाता'। सविता कौतूहल से ही कहानी पढ़ने लगी। कहानी में अपने ही नगर का हूबहू वर्णन देख कर कौतूहल बढ़ा। जब जुलाई मास के अन्तिम सप्ताह में 'तूफान' फिल्म की भी बात आई तो जैसे उस में डूब गई। याद आया कि वह भी उसे देखने गई थी।

दुरंगे ब्लाउज की चर्चा देखी तो मुंह से निकल गया—'हाय मर गई !' सिर चकरा-सा गया। पत्रिका हाथ से खिसक ही गई परन्तु उंगलियों ने उसे लोहे की-सी मजबूती से जकड़ लिया और सांस रोक कर पढ़ गई। पसीना आ गया। मानो किसी ने दुस्साहस कर उस के नाम प्रेम-पत्र लिख दिया हो लेकिन हाय अखबार में !

लेटी न रह सकी, उठ बैठी। बैठने से भी चैन न आया तो टहलने लगी। लज्जा से सोचा, पत्रिका को जला दे।····परन्तु पत्रिका तो केवल एक ही नहीं छपी होगी !·····वैसा ब्लाउज स्कूल में सिवाय उस के और किस के पास है ?·····क्या करे ?····अगर वह पुकार बैठता तो ?

सविता कमरे में लौट आई। कहानी फिर ध्यान से पढ़ी। पढ़ने के बाद सिर पीछे कर, गर्दन सीधी कर ली और मन-ही-मन साहस से कहा—किसी का शरीर अच्छा होगा तभी तो अच्छा लगेगा·····।

उस ने आईने के सामने खड़े हो अपना चेहरा देखा और आईने से दूर खड़ी हो कर शरीर की गठन और फिर निस्संकोच अपनी कल्पना का समर्थन किया—ठीक ही तो है !

दोनों हाथ सिर के नीचे रख कर वह चित लेट गई। ऐसी बेचैनी अनुभव हो रही थी जैसे कोई बड़ा भारी कल्पनातीत खजाना अपने घर में मिल गया हो और वह उस की बात होठों पर न ला सकती हो।

ख्याल आ गया—अगर पुकार लेता ? ·· अगर पुकार लेता तो ···? उस के हृदय से इतनी गहरी सांस उठी कि खड़ी हो जाने के लिये विवश हो गई।

वह झुंझला उठी—इस में अपमान क्या ··· ? एक दिन ऐसा क्यों न होगा ?

अभी समय था। वह झपट कर अपनी सहेली लीला के कमरे में पहुंची और मचल कर आग्रह किया—"चलो, आज सिनेमा जरूर चलेंगे!"

चलने से पहले उस ने कितने ध्यान और साहस से ड्रेस किया। वह दुरंगा ब्लाउज बार-बार हाथ में आ जाता था और हाथ से गिर पड़ता था। उतना साहस न हुआ।

वह फिर उसी कुर्सी पर बैठी जहां डेढ़ मास पूर्व 'तूफान' देखने के लिये बैठी थी। उस का माथा झनझना रहा था। घूम कर पीछे देखने का साहस न था परन्तु अपनी पीठ पर उसे निगाहें चुभती-सी जान पड़ रही थीं। बिना कुछ देखे और सुने, सिनेमा का आधा समय उस ने जैसे-तैसे बिता दिया।

उस ने निश्चय कर लिया कि आधे में रोशनी होने पर वह उधर गुसलखाने की ओर जायेगी। जाते समय उधर देखने में कोई कुछ न कह सकेगा। वह एक बार जरूर देखेगी, जरूर, जरूर!

आखिर उस ने धड़कते हुये दिल को वश में करने के लिये दांत दबा कर उधर देखा, कई आदमी थे। वह किसी के भी चेहरे को स्पष्ट देखने का साहस न कर सकी। उस ने सोचा—वह कौन हो सकता है?·· क्या वह आज नहीं देख सकेगा!····मैं नहीं देख सकती, वह तो देख सकता है!

सिनेमा समाप्त हो जाने पर निराशा और असफलता से डूबता हृदय लिये वह उठी। सड़क पर बिजली के प्रकाश में भी उसे कोई नहीं देख रहा था। लौटते समय अपने सैंडल की आहट के अतिरिक्त और कोई आहट पीछे से सुनने के प्रयत्न में वह दो बार लड़खड़ा भी गई। उस समय खिन्न होने के बजाय उस ने अवसर पा पीछे घूम कर देख लिया ····परन्तु कोई न था।

लौटने पर जैसे उस की तबीयत खराब हो गयी। वह खाट पर लेट गई। उस के प्राण मूक पुकार में चीख रहे थे—क्यों नहीं हुआ··! एक बार तो वह अपने अस्तित्व को अनुभव कर सकती।

वह उठी और लैम्प स्टूल पर रख एक बार फिर उस कहानी को पढ़ने लगी····बाहों में दबा ली जाने की बात! उस का रोम-रोम सिहर उठा। उस की उंगली पकड़ कर सुन्दर शिशु चलने की बात।····उस की छाती गर्व से उभर आई।·····छत्र-छाया के रूप में सहारे के लिये कभी धोखा न देने वाली बांह और यदि बांह सड़क पर ही छोड़ कर चल देती! ····उसे जान पड़ा जैसे उस की खाट टूट कर वह नीचे खाई में, अनन्त खाई में गिरी जा रही है·····।

सविता को सुध आने पर जान पड़ा, सिर में चक्कर-सा आ गया था···· कितना बड़ा धोखा हो जाता ! ओफ, अगर हो जाता····! तो·····?

क्रोध में वह पत्रिका को मरोड़े जा रही थी कि उसे चूरा-चूरा करके, उस का निशान तक मिटा देगी।

ओफ, अगर हो जाता तो·····! ओफ, बच गई !

अंग्रेज का घुंघरू

कुछ बरस पहले सरकारी अफसर दौरे के लिये अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे; तफरीह होती थी और अतिरिक्त कमाई का भी कुछ डौल हो जाता था। अब भत्ते में कमी और मंहगाई ने स्थिति बदल दी है। पहाड़ी इलाकों में तो और भी मुश्किल है।

यों अल्मोड़ा जिला सुहावना है। घने, हरे जंगलों से छायी, एक के पीछे दूसरी झांकती अनेक पर्वत-श्रेणियां, घाटियों में विशाल सरकस की गैलरियों जैसी हरी मखमल से मढ़ी खेतों की सीढ़ियां, बीच-बीच में बल खाते चांदी से पटे रास्तों जैसी जल की धारायें जगह-जगह दिखाई देती रहती हैं। इन दृश्यों के लिये शौकीन लोग और यहां के स्वास्थ्यवर्धक जलवायु के लिये रोगी दूर-दूर से आते हैं परन्तु वहां तक ही जहां मोटर की सड़क उन्हें सुविधा से ले जा सके। बीहड़ उतार-चढ़ाव के रास्तों पर गाड़ियों से सफर संभव नहीं। पैदल चलने से शरीर का पूरा सत्व पसीना बन कर चोटी से एड़ी तक बह जाता है। टट्टू पर लद कर चलने से शरीर की दशा ऐसी हो जाती है जैसी टांके टूटी रजाई को झाड़ देने से उस में रुई की अवस्था हो जाती है। पैसे का दाम अब कुछ रह नहीं गया। सरकार द्वारा निश्चित मजदूरी में कुलियों को बोझा ढोने का उत्साह नहीं होता। अपनी जेब का पैसा खर्च करके दौरा करने का साहस केवल तनख्वाह में ही निर्वाह करने वाले अफसर को नहीं हो सकता। उस के लिये जेब भरने का दूसरा उपाय भी आवश्यक है।

पन्द्रह बरस तक हुकूमत करने की नौकरी के बाद भी मैं छोटी-मोटी जायदाद नहीं खरीद सका। अभी तक डिप्टी ही बना हूं, कलक्टर भी नहीं बन सका। यह विवेक का समय मेरी अयोग्यता का काफी प्रमाण समझा जाना

चाहिये । इसलिये इस युग में, जब कि एस० डी० ओ० लोग परमिट बांटने का अधिकार पाकर कल्पवृक्ष के माली बना दिये गये हैं, मुझे पंचायत राज अफसर जिसे राष्ट्रभाषा में 'महापंच' का महिमामय नाम दिया गया है, ही बन जाना पड़ा । आशा थी कि इस नये महकमे में, जो कि ब्रिटिश शासन की गुलामी की परम्परा से अछूता समझा जाना चाहिये, जनता में आत्मनिर्णय की भावना उत्पन्न करने और रचनात्मक कार्य की स्वतन्त्रता होगी परन्तु नुकीली सफेद टोपी का प्रचंड प्रताप यहां भी कम उग्र नहीं ।

'तल्ली-माहिल' पट्टी में जब से पंचायत बनी, बराबर झगड़ा चला आ रहा था । पंचायत जम ही नहीं पा रही थी । विवश होकर वहां की गांव सभाओं की स्थिति जानने के लिये पट्टी के दौरे पर जाना ही पड़ा और 'मोरनौला' के डाक बंगले में डेरा किया । पट्टी के सभी पंचों को केन्द्र के गांव 'जाखोला' में तीसरे पहर आ जाने का संदेश भिजवा दिया । पट्टी के पंचायत-इंसपेक्टर के साथ स्वयं स्थिति जानने के लिये तीनों गांवों में भी घूम आया ।

साधारणतः दौरे में एहतियातन पिस्तौल जेब में रख लेना ही काफी समझता हूं परन्तु 'मोरनौला' का जंगल बहुत घना है । शिकार काफी मिलता है । अप्रैल का महीना था । अप्रैल तक शिकार की छूट रहती है इसलिये बन्दूक भी साथ ले ली थी । अर्दली साथ था । सामने की फाइल और बन्दूक उसी के पास थी ।

'पासू' गांव में सभा के लोगों से मिलने के बाद 'बांज' के घने जंगल में से होकर जाखोला की तरफ आ रहे थे । पंचायत इंसपेक्टर ने बांज के एक पेड़ की शाख पर बैठे खूब मोटे जंगली मुर्ग को गिरा लिया । इस ख्याल से कि मुर्ग रात के खाने के समय काम आ जाये, अर्दली को मुर्ग और बन्दूक दे कर डाक बंगले लौटा दिया ।

पंचायत इंस्पेक्टर के खिलाफ बहुत से पंचों को शिकायतें थीं ; उस ने भी अपनी स्त्री या बच्चे को कुछ कष्ट होने की बात कही थी इसलिये 'जाखोला' पहुंच पंचों से बात आरम्भ करने से पहले ही इंस्पेक्टर को भी अपने गांव चले जाने की छुट्टी दे दी ।

जाखोला में पंचों से बहुत देर तक बात की परन्तु प्रतिद्वन्द्वी दलों में किसी प्रकार समझौता नहीं हो पाया । ठाकुर बीरसिंह किसी तरह मानने के लिये तैयार नहीं था । उस में झगड़े और मुकदमेबाजी की जन्मजात प्रतिभा जान पड़ती थी । मुझे अपनी बात का समर्थन न करते देख उस ने बात सुनने से

इन्कार कर दिया। वह अपनी सफेद टोपी सहलाता हुआ पंचायत से उठ खड़ा हुआ और बोला—"इन्साफ की बात नहीं सुनी जाती तो जिसे जो करना है, कर ले। आखिर तो भगवान देखते हैं। अल्मोड़ा में अदालत है। लखनऊ में मिनिस्टर हैं, इलाहाबाद में हाईकोर्ट है। हम देख लेंगे। हम 'वाकआउट' करते हैं जी !" ठाकुर धौंस देकर अपने समर्थकों के साथ पंचायत से उठ गया और दस हाथ परे जा बैठा। ऐसी स्थिति में गांव में अधिक ठहरना न उपयोगी था न आत्म-सम्मान के अनुकूल। सभा समाप्त होने पर मैं फाइल बैग में बन्द कर और छतरी ले कर उठ खड़ा हुआ।

जमनसिंह के आदमी मुझे डाक बंगले तक पहुंचा आने के लिये तैयार थे लेकिन इन आदमियों को साथ ले कर चलने का मतलब था, प्रतिद्वन्द्वी दलों में से एक के साथ आत्मीयता प्रकट करना इसलिये अकेले चलना ही उचित जंचा।

अभी सूर्यास्त में एक घण्टे का समय था। जमनसिंह से रास्ता पूछ लिया। उस ने समझाया—"पगडंडी-पगडंडी चले जाइये। सामने का टीला पार कर नाले में उतर जाइयेगा। नाले में पानी कम ही है। पत्थरों पर पांव रख कर लांघ सकते हैं। सामने 'सौ' (चीड़ों से छायी ढलवान) है। फर्लांग भर ऊपर चढ़ जाइये। जंगलाती बटिया मिल जायगी। दक्खिन घूम जाइये। डाक बंगला मील से भी कम ही होगा।"

पगडंडी से नाले पर पहुंचा तो एक चौड़ी चट्टान देख चढ़ाई चढ़ने से पहले एकान्त में बैठ कर सिगरेट पी लेने की इच्छा हुई। दिन भर की थकान से कमर सीधी कर लेने के लिए चट्टान पर लेट ही गया। नाले के साथ-साथ घिंघारू की ऊंची झाड़ियां थीं और कुंज (जंगली गुलाब) खूब फूला हुआ था। भीनी-भीनी महक आ रही थी। संध्या समय इन झाड़ियों में बसेरा लेने के लिये आये बुलबुलों के झुंड जोरों से टिरटिराते हुए इधर-उधर फुदक रहे थे, कहीं-कहीं चोंचें भी लड़ जातीं; शायद स्थान के लिए झगड़ा हो रहा था। ख्याल आया—झगड़ा सिर्फ आदमियों में ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी होता है। नाले के पार छोटे-छोटे खेत एक के ऊपर एक गांव की ओर चढ़ते चले जा रहे थे। कुछ मर्द और औरतें इन खेतों में अब भी निराई कर रहे थे।

चट्टान पर चित्त लेट कर आकाश की ओर आंखें किये सिगरेट पीने में बहुत विश्राम जान पड़ रहा था। आकाश आधा-आधा बंट रहा था। आधा खूब नीला और आधे में उजले-उजले बादल। ख्याल आया, शायद रात में पानी

वरस जाय । होगा, वेफिक्री से कहा—कौन अभी बरसा जाता है । विश्राम की शान्ति अनुभव करने के लिये आंखें कुछ क्षण के लिये झूठ-मूठ मूंदी थीं परन्तु सचमुच झपकी आ गई ।

मुंह पर छींटे अनुभव कर सकपका कर उठा । अंधेरा हो गया था । नयी बियाबान जगह में घबराहट से मन धक्क से रह गया । घड़ी पर आंखें गड़ा कर समय देखा, आठ बज रहे थे । लगभग दो घण्टे सोया होऊंगा । अंधेरे में अनजाने रास्ते पर जाने में भय मालूम हो रहा था । एक बार जाखोला लौट कर लालटेन और आदमी साथ ले लेने का भी खयाल आया । जंगली जानवरों का खासा भय था परन्तु अफसर के लिये यह बात कुछ सम्मानजनक न लगी क्योंकि पहले साथ के लिये इन्कार कर चुका था । वे तो मुझे पहुंच गया समझ रहे होंगे । यह सोच कर दांत दबा कर जैसे-तैसे चलने की ठानी । चल ही पड़ा ।

पानी का छींटा जैसे मुझे नींद से सावधान करने के लिये ही आया था । बादल धीमे-धीमे गरजता रहा परन्तु बरस नहीं रहा था । मैं मन ही मन सोच रहा था, यह मुझे जगाने के लिये ही था; डाक बंगले पहुंच जाने की चेतावनी दे रहा है । भगवान कितने दयालु हैं । तुरन्त उठ कर ढलवान पर चढ़ने लगा । प्रकाश कम होने से बटिया दिखाई नहीं पड़ रही थी परन्तु जमनसिंह ने बताया था कैसे भी ऊपर पहुंच जाने से सड़क मिल जायेगी । नीचे घना, चिकना पिरूल (चीड़ की पत्ती) बिछा हुआ था । पांव फिसल-फिसल जाते थे । यथासम्भव जल्दी चलने का यत्न कर रहा था । जितना भय वर्षा का था, उतना ही जानवर का भी था । जंगली जानवर के मुकाबले में पिस्तौल का ही सहारा था । जेब में हाथ डाल उसे बार बार छूने से साहस होता था ।

लगभग पन्द्रह मिनट तक चढ़ता रहा परन्तु जंगलाती सड़क नहीं मिली । मन में आशंका होने लगी अंधेरे में पगडंडी से भटक गया हूं । यों चलता जाऊंगा तो कब तक चलता रहूंगा ? उसी समय सहसा बादल उलट से पड़े और मूसलाधार बरसने लगा । छतरी खोल ली और एक बड़े से पेड़ के तने के साथ लग कर खड़ा हो गया । सर्दी भी मालूम होने लगी । सोचा, जाखोला लौट चलूं । पहाड़ों से नीचे घने पेड़ों के बीच से कोई-कोई रोशनी टिमटिमाती दिखायी पड़ रही थी । सोचा, वर्षा थमे तो देखा जायेगा ।

पानी लगभग दस मिनट जोर से बरसा और सहसा ही थम भी गया । जाखोला लौटना सम्मानजनक न जंचा । सोचा, सरकार और उस के अफसरों

की सब से बड़ी शक्ति जनता पर उन का रोब है। लोगों के सामने जा कर अंधेरे और जानवरों के भय से गिड़गिड़ाना उचित नहीं। प्रायः चोटी तक पहुंच ही गया हूं। जंगलाती बटिया आखिर इसी तरफ से गुजरती है, तिरछा आ गया होऊंगा तो भी सौ-पचास कदम के अन्तर से मिल ही जायेगी। फिर तो मील भर ही है बस, रीछ या छोटा बाघ न मिले।

पेड़ के नीचे से निकल कर फिर चढ़ाई की तरफ कदम बढ़ाये। पिरूल भीग जाने से अब पांव नहीं फिसल रहे थे। जंगली जानवरों के सम्बन्ध में सुनी हुयी बातें याद आ रही थीं—रीछ सामने पड़ जाय तो पिछले पांव पर खड़ा हो कर हमला करता है। कभी पीछे से खोपड़ी ही नोच लेता है। आदमी को नीचे ढलवान पर देख लेता है तो उस पर कूद पड़ता है। जंगल में घास काटने वाली स्त्रियों को बहुत परेशान करता है। नर-मादा में भेद समझता है, बहुत कामुक होता है परन्तु यहां के लोग रीछ का सामना एक बड़े हंसिये से ही कर लेते हैं। गुलदार, छोटा बाघ अधिक भयंकर होता है। वह दुबक कर आदमी पर हमला करता है। सड़क किनारे के किसी पेड़ पर चढ़ कर मोटी शाख पर दुबका बैठा रहता है और आदमी के नीचे से निकलते समय सिर या कंधों पर कूद पड़ता है।

उपाय भी याद आ रहे थे—रीछ से बचना हो तो चढ़ाई की ओर नहीं ढलवान की ओर भागना चाहिए। रीछ ढलवान पर तेजी से नहीं भाग सकता। उन की आंखों के सामने बाल आ जाते है। रीछ कांटों से बहुत डरता है, कांटों में छिप जाना चाहिए। खुद भी सोचा—कोई भी जानवर झपटे, अगर छतरी की नोक उस के खुले मुंह में ठोंक कर दबा दें ?···नोक एक बार गले तक पहुंच जाये और पूरी शक्ति से धंसा दी जाये तो जानवर जरूर बेबस हो जायेगा। बारिश रुक चुकी थी इसलिये छतरी को लपेट कर छड़ी की तरह सुथरा बना लिया। जरा भी खटका होने पर रोयें खड़े हो जाते थे। शिकारियों की बातें याद करता जा रहा था जो शेर, भालू को खोजते-फिरते हैं। बस, साहस और औसान कायम रहना चाहिये, तभी आदमी जंगली जानवरों को बस में कर सकता है। पहाड़ी देहाती तो कुल्हाड़ी और हंसिये से शेर तक का सामना करते हैं, अपनी जेब में तो पिस्तौल है।

कुछ और ऊपर चढ़ कर सड़क मिल गई। राह भूल जाने के भय से जान बची। आशा हुई, बटिया पर कोई आता-जाता आदमी भी मिल सकता है।

पहाड़ी लोग तो रात के पहर-दोपहर तक राह चलते रहते हैं। ऊपर आकर बांज का जंगल मिला। इस कारण सड़क पर अंधेरा और भी घना था। जानवर भी सुना है, बांज के जंगल में ही अधिक मिलते हैं।

पहाड़ी लोग जंगली जानवर का उतना भय नहीं करते जितना भूत-मसाण का। मन में सोचा, जंगली जानवर न मिले, भूत-मसाण की भली रही परन्तु उस समय भूत और मसाण की कल्पना का भी तिरस्कार करना भला न लगा। मन ही मन सोचा, सृष्टि का क्या अन्त है ? पैशाचिक शक्ति भी तो होती है। शरीर नष्ट हो जाता है तो आत्मा क्या होती है ? अतृप्त आत्मा दूसरों को क्लेशित करती हो तो आश्चर्य क्या ?

आंखों को खूब सतर्क खोले तंग जंगलाती सड़क के दोनों ओर देखता जा रहा था। साहस बढ़ाने के लिये पिस्तौल को जेब से निकाल हाथ में ले लिया। भरोसा था, मौका पड़ने पर यदि पिस्तौल की गोली जानवर के माथे या सीने पर लग जाये तो रायफल के बराबर ही समझिये। चूकने को तो रायफल का निशाना भी चूक सकता है परन्तु हथियार का भरोसा क्या ? हथियार के उपयोग का अवसर मिले तब तो। ऐसे समय भगवान का ही सहारा होता है। मन ही मन कहता जा रहा था, हे प्रभो ! संकट में तुम्हीं सब के रक्षक हो। बचपन में ऐसे समय हनूमान चालीसा का बड़ा सहारा होता था। पढ़-लिख लेने के बाद से गायत्री मन्त्र की शक्ति पर विश्वास हो गया था। मन ही मन गायत्री का जप करता जा रहा था कि बुद्धि चैतन्य और मन स्थिर रहे। जितने कदम चल लेता, समझता, भगवान की दया से इतना निरापद गया। भय के इतने कदम कम हो गये।

सहसा धीमी गुर्राहट सुनाई दी। कदम शिथिल और रोंगटे खड़े हो गये। कांपते हुये हाथ में पिस्तौल के दस्ते पर मुट्ठी मजबूत कर हाथ साध लिया। गुर्राहट दाहिनी ओर थी। सतर्कता से देखा, दाहिनी ओर एक पेड़ के उजले तने के समीप कोई बड़ा सा काला जानवर सिमिट कर बैठा था, जैसे बड़ा कुत्ता चौकस चौकन्ना बैठा हो। गुर्राहट और साफ सुनाई दी। रोम-रोम से पसीना बह गया। पिस्तौल उस ओर साध ली। जानवर गुर्राना रोक पीछे की ओर सिमटता जान पड़ा, जैसे बिल्ली शिकार पर कूदने के लिये शरीर को स्प्रिंग की तरह पीछे खींचती है। क्षण तो बहुत होता है, अणु मात्र में ही सब कुछ होने को था, या तो जानवर मेरे ऊपर होता या मेरी गोली उस के शरीर में।···गोली दाग दी।

जानवर एक चिल्लाहट से उछल पड़ा। उस की काली खाल फट कर फैल गई और आदमी की आकृति क्या, आदमी ही·····कुछ बड़े आकार का एक आदमी उछल पड़ा और उस के सिर पर घंटियां बज उठीं। और यह सब प्रत्यक्ष था।

भूत-मसाण का भय लड़कपन की बात थी। तब रात के अंधेरे में अपने ही घर में, पीपल के नीचे, सभी जगह भूत की आशंका होती थी और हनुमान चालीसा का पाठ कर के भूत से बचने का उपाय भी किया करते थे। उन बातों को अब तीस बरस बीत चुके थे परन्तु इस चमत्कार के सामने तर्क भूल कर संस्कार ही प्रबल हो गये। घुटने लड़खड़ा गये और मुख से सहसा शब्द निकल पड़े—"जय कपीश तिहुं लोक उजागर····।"

काले जानवर की खाल में से हनुमान जी की ही तरह कुलांच मार कर उछल पड़ने वाले उस जीव ने मनुष्य के स्पष्ट स्वर में ललकारा—"तेरे मसाण की मां का·····।" उस गाली के साथ फिर जोर से घंटियां खनखनाने की आवाज आई।

मनुष्य का स्वर और जीवन की नित्य परिचित गाली सुन कर सांस में सांस आई। मतिष्क साफ हो गया। घिघियाये हुये गले से पुकारा—"डाक वाला है··।" और पिस्तौल को फौरन जेब में रख लिया।

उत्तर में फिर पैदल डाक ले जाने वाले हरकारे की लाठी के घुंघरू बज उठे और फिर ललकार सुनाई दी—"भाग साले! तेरे मसाण की मां का·····! खूब जानता हूं साले, साहब का रूप धर कर आया है।"

खांस कर मैंने पुकारा—"क्यों डाक वाले कम्बल लपेट कर सो गया था? बहुत जोर का खुर्राटा लेता है!" उस का भय दूर करने के लिये जेब से माचिस की डिबिया निकाल कर सींक जला कर अपने चेहरे की ओर उठाई और प्रश्न किया, "डाक बंगला कितनी दूर है?"

हरकारे ने अपना सन्देह निवारण करने के लिये एक बार और घुंघरू बजाया और आश्वासन पाकर बोला—"हां हजूर, जोर का पानी आ गया तो पेड़ के नीचे दम ले रहा था। हजूर, बंगला यही आध मील पर होगा! ·····डाक बंगला जा रहे हैं?"

"हां"

शरीर इस पल भर के तनाव से चूर-चूर हो गया था। जेब से एक सिगरेट

निकाल माचिस सुलगा कर जरा सुस्ता लेने के लिये कोई पत्थर देख रहा था। हरकारे ने अपना कम्बल बिछा दिया।

उस के कम्बल पर बैठ एक सिगरेट उस की ओर बढ़ा कर पूछा—"डर गये तुम ?·····क्या सपना देख रहे थे ?"

"नहीं हुजूर", विश्वास के स्वर में हरकारे ने उत्तर दिया, "भैन··मसाण लगता है इस सड़क पर।····बड़ा छलिया है। बड़े रूप धरता है। कभी सीटी देता है, कभी जानवर की बोली बोलता है, कभी कान के पास बन्दूक छोड़ देता है, अभी देखा हुजूर ने ?"

"यह अभी जो खटका हुआ, किसी पेड़ की बड़ी डाल टूट गई होगी ?" मैंने उसे समझाना चाहा।

"अरे नहीं हुजूर, रात में डाल और कौन तोड़ेगा ?" हरकारे ने आग्रह किया, "यह सब वही करता है····।"

सिगरेट से कश लेकर मैंने पूछा—"जंगल में तो जानवर भी मिलता होगा ?"

"हां हुजूर, क्यों नहीं मिलता। जंगल ही ठहरा। जंगल तो जानवर का घर ठहरा। कभी रीछ, छोटा बाघ मिल ही जाता है लेकिन हुजूर, मसाण जादे बदमाशी करता है।"

पूछा—"जानवर या मसाण मिल जाता है तो क्या करते हो ?"

"कोई डर नहीं है हुजूर, यह अंग्रेज का घुंघरू है। जहां तक इस की आवाज जाती है भूत, मसाण, बाघ कोई नहीं ठहर सकता। हुजूर, अंग्रेज का बड़ा प्रताप रहा। अब भी यह उस का घुंघरू है। हुजूर, पचीस बरस हुये, जब यहां पहले पहल डाक निकली, तब खतरा था, अब क्या है ! तब भी शाम के आठ बजे 'मगरा' से डाक लेकर, डबल-चौकी करके सुबह चार बजे 'मालकोट' में डाक देते थे। तब हुजूर एक बार यहां बड़ा बाघ पड़ने लगा था। अलमोड़ा जाकर रपट लिखाई। तब डाक के साहब एक बड़े भारी असली अंग्रेज अफसर थे। हुजूर, बड़े मेहरबान साहब लोग थे, उन का क्या कहना ? साहब ने हुक्म दे दिया, रात के वक्त जंगल में डर होता है। सब हरकारों के घुंघरू बढ़ा दो। हुजूर, पहले भाले में चार घुंघरू मिलते थे, तब आठ हो गये। भैन·····बाघ और मसाण की क्या मजाल कि सरकार के हरकारे से बोले। सरकारी डाक सर पर हो तो क्या डर ?"

सिगरेट समाप्त कर वह फिर बोला—"अब देखा हुजूर ने ? साले ने पेड़

की डाल तोड़ दी। बस चलता तो उठा कर पटक देता लेकिन हम लोग ऐसा बेखबर थोड़े रहते हैं ! दम लेने को लेटा था तब भी घुंघरू हाथ में था। जहां घुंघरू बोला, साले का पता नहीं। हुजूर, अभी परसों रात में डाक और भाला सड़क किनारे रख कर पेशाव करने बैठ गया था। मसाण भैन·····ने थप्पड़ मार दिया। मैं पीछे को गिरा तो हाथ पड़ गया घुंघरू पर। मसाण साला एक दम गायब !"

सिगरेट समाप्त हो जाने पर उठ खड़ा हुआ और डाक बंगले की ओर चल पड़ा। मन ही मन भगवान को धन्यवाद दे रहा था कि भय से हाथ कांप जाने के कारण पिस्तौल का निशाना चूक गया। यदि कम्बल में लिपटे, खर्राटे लेते हरकारे को गोली लग जाती तो क्या होता ?

सफलता के लिये और असफलता के लिये भी धन्यवाद भगवान को ही है परन्तु हरकारे को तो अंग्रेज के घुंघरू के सिवा किसी और पर भरोसा है नहीं। भगवान और अंग्रेज के घुंघरू में कौन बड़ा है ?·····विश्वास के इस झगड़े में तो विश्वास ही फैसला भी कर सकता है।"

अमर

बात का सिलसिला जोड़ने के लिये स्मृति को पच्चीस वर्ष पीछे ले जाना होगा। अब जान पड़ता है किसी दूसरे की बात हो या किसी से सुनी हुई कहानी।.....समय भी कितना बीत गया है। तब से तो एक नयी पीढ़ी चलती-फिरती नजर आने लगी है।

कालेज में पढ़ रहा था, जीवन में सफल हो सकने की तैयारी कर रहा था। कौन नहीं जानता कि समाज में आदर और आराम से जीवन बिता सकने के लिये अच्छी जगह पा लेना आसान नहीं है? जगह की कमी जान पड़ती है। दोनों कोहनियों से ठेलते हुये, जगह बना कर आगे बढ़े बिना कुछ नहीं हो सकता।

सौन्दर्य अपनी ओर खींचता था परन्तु जीवन निर्वाह की आशंका पीछे लगी थी कि जीवन में आर्थिक सफलता की ट्रेन पकड़ कर उस में पांव जमा लेना पहले जरूरी है। चित्रकारी में लग जाने से अपना और परिवार का निर्वाह हो जाने लायक पैसा पा जाने की आशा कहां थी?.....सौन्दर्य और कला शौक की चीजें ठहरी। पहले जिन्दगी, तब शौक। वकील बनना जरूरी था अर्थात् दूसरे की असुविधा से लाभ उठाने की विद्या सीखना। चित्रकारी का अभ्यास न होने के कारण यत्न करने पर मेरे हाथ से सौन्दर्य के बजाय कुरूपता ही बन पड़ती थी। मन के लिये यह कितनी बड़ी ग्लानि थी।

अल्मोड़ा के एक सहपाठी मित्र से पहाड़ों के सौन्दर्य की बातें सुन-सुन कर एक बार दशहरे की छुट्टियों में उसी का मेहमान बन कर अल्मोड़ा आया था। अब फिर यहां आकर वह स्मृति ऐसी ताजी हो गयी है जैसे कोई पुराना सुरक्षित रखा चित्र मिल गया हो।

अल्मोड़ा के अनेक स्थलों पर घूम-घूम कर वह चित्र देखे जिन्हें मनुष्य की अंगुलियां नहीं बना सकतीं, प्रकृति की विराट शक्तियां ही उन का आयोजन

करती हैं। ऊपर नीलम सा नीला आकाश, सड़क के नीचे घाटियों में भरे बादलों का निस्सीम विस्तार। इन बादलों की पीठ पर तैरते काले-काले स्तूपों जैसे पहाड़ और उन के ऊपर चांदी के भग्न पिरामिडों की पंक्तियों जैसी धूप में चमकती बरफ की चोटियां!......मित्र के साथ बातचीत करते हुये घूम-फिर कर यह सब दृश्य देख लेने से सन्तोप नहीं होता था इसलिये जब-तब चुपचाप अकेले में इन्हें देखने निकल जाता।

अल्मोड़ा बाजार से 'पोखर खाली' और 'हीराडुंगरी' की लम्बी चढ़ाई चढ़ कर, शहर से डेढ़ एक मील पर ही 'नारायण तिवारी देवाल' की बस्ती है। पहाड़ियों पर ऊपर, नीचे साहब लोगों के कुछ बंगले हैं। सड़क के किनारे बायें हाथ आठ-दस दुकानों का सिलसिला है। बायें हाथ भी शुरू में ही दो एक दुकानें हैं, शेष जगह पड़ाव पर ठहरने वाली खच्चरों को बांधने के लिये खाली है।

दूकानें मैली-बेरौनक हैं। गुड़ और तेल के सौदे पर मक्खियां और बर्रें मंडराते रहते हैं। चारों ओर चीड़ के जंगल होने के कारण ईंधन की कमी नहीं है। चीड़ के ईंधन के धुयें का आवरण दुकानों की दीवारों और सब सामान पर चढ़ा रहता है। दुकान की सब चीजों से अल्मूनियम की एक केतली भट्ठी या चूल्हे की विरहाग्नि पर सुरसुराती हुई प्रेमी ग्राहक की प्रतीक्षा करती रहती है। ग्राहक के आने पर दुकानदार किसी भी समय पीतल के गिलासों में चाय बना देते हैं।

इन दूकानों के ऊपर ही दूसरी मंजिल में दूकानदारों के परिवार रहते हैं। दूसरी मंजिल की ऊंचाई इतनी है कि बाजार में सड़क पर खड़ा आदमी खिड़की तक हाथ बढ़ा कर चीज ले-दे सकता है। आते-जाते मुसाफिरों को खिड़कियों से पीतल के बरतन, अलगनियों पर लदे कपड़े और चारपाइयों के पांव दिखाई देते रहते हैं।

अल्मोड़ा बाजार में हर चालीस-पचास कदम पर चाय की दुकानें हैं लेकिन लम्बी, कर्री चढ़ाई चढ़ कर 'नारायण तिवारी देवाल' पहुंचने पर अगली चढ़ाई शुरू करने से पहले चाय पीने की रुचि होने लगती है। खास कर इसलिये कि चाय पीते समय सामने जंगलों का दृश्य रहता है। कई बार इधर आ चुका था।

छुट्टियों के अन्त में, अल्मोड़ा छोड़ने से पहले, एक दिन सुबह ही 'नारायण तिवारी देवाल' की ओर गया। प्रयोजन था, उस से आगे 'कसार देवी' से दिखाई देने वाली हिमालय की बर्फानी चोटियों की दीवार का एक फोटो लेने

का। 'कोडक' का बक्स-कैमरा हाथ में था। 'नारायण तिवारी देवाल' पहुंच कर चाय के गिलास से वहां तक आने की थकावट मिटाने के लिये दायें हाथ की पहली दुकान के भीतर जा बैठा।

दुकानदार ने अनगढ़ शाखाओं के पायों पर, चीड़ के मोटे तने की बगल से बची फांक जड़ कर गाहकों के बैठने के लिये बैंच बना दी है। दुकानदार धूनी पर तपस्या करती केतली के नीचे फूंक मार कर आग को सचेत करने लगा। सांस ले पाने के लिये कुछ प्रतीक्षा कर लेने में मुझे भी आपत्ति नहीं थी।

बैंच पर बैठने से नजर चौड़े दरे के बाहर सड़क के उस पार दुकान की दूसरी मंजिल की खिड़की पर ही पड़ती थी। खिड़की का आधा निचला भाग तख्ते से पटा था। इस तख्ते के किनारे पर कोहनी टिका, एक भरी जवानी लड़की या एक बच्चे की मां युवती खिड़की की चौखट में अटी बैठी थी। वह सड़क से उतरती ढलवानों के परे, कहीं दूर नजर गड़ाये थी या सुबह की ठंडक में कुछ क्षण के लिये ताजी धूप सेंक रही थी।

अल्मोड़ा में नागंरिक श्रेणी की स्त्रियां घर के बाहर प्रायः नहीं दिखायी देतीं। युवती बेखबर सी, घर के काम-काज में चीड़ के धुएं से मटियाली धोती में शरीर को लपेटे थी परन्तु उस के स्वस्थ गोरे चेहरे और चौखट को थामे हाथों और बाहों पर न चीड़ के धुएं की मलीनता और न घर के भीतर मुंदे रहने की कुम्हलाहट ही थी। मानो केसर मिला दूध चू जाना चाहता हो। उस के चेहरे और शरीर पर फूटी हुई जवानी को संभालने में उस की मैली धोती के अंचल के तार-तार खिंच रहे थे। तख्ते पर दबी उस की जांघ जैसे धोती में छिपाई हुई सुडौल लंबी लौकी हो और कमर डमरू जैसी।

धुएं से काले मकान की खिड़की में वह चेहरा ऐसे जान पड़ रहा था जैसे घूरे के ढेर पर दुपहरिया का गुलाबी फूल खिल आया हो या जैसे उसी रोज सुबह देखा था, धूसर मटियाले बादलों के उफान पर सूर्य की किरणों के स्पर्श से गुलाबीपन लिये कोई बरफ ढकी हुई चोटी हो। अन्तर था दुपहरिया के फूल या बरफ की उजली शिला में। सौंदर्य परखना पड़ता है। उस युवा शरीर से फूटती लहरें, देखने वाले के शरीर को मथ कर प्राणों को समेटे ले रही थीं।

हाथ समीप रखे कैमरे की ओर बढ़ गया। कैमरे को गोद में ले कर सिर झुका कर 'व्यू फ़ाइंडर' में देख फोकस में ले लिया। एक बार खिड़की की ओर निगाह उठाई—यदि फोटो में आंखें भी आ सकें ? आंखें मिल गयीं·····जैसे नये

तोड़े नारियल की सफेदी पर आ बैठे काले भौंरे। हाथ ने ठीक समय पर कैमरे का ट्रिगर दबा दिया। शरीर में जैसे बिजली का तार छू गया हो···!

लड़की झमक कर ऐसे अदृश्य हो गयी जैसे खरगोश शिकारी कुत्ते को समीप देख झाड़ी में कूद जाये। वह चली गई तो क्या ? उस के रूप का प्रतिबिम्ब तो मेरे कैमरे में सदा के लिए आ गया था। संतोष का एक उच्छ्वास ले कैमरे को एक ओर रख दिया। एक अनमोल रत्न समेट पाने का गर्व था।

चाय का गिलास अभी आधा ही समाप्त कर पाया था कि सामने की दुकान से एक अधेड़ व्यक्ति ने बहुत ऊंचे स्वर में सम्बोधन किया—"यह क्या बदमाशी हो रही है ? देश के गुण्डों को हम सीधा कर देते हैं···"

इस की चिल्लाहट से दो-तीन और आदमी आस्तीनें चढ़ाते हुए पास-पड़ोस की दुकानों के सामने आ जमा हुए। सब से पहले ललकारने वाला आदमी चिल्लाने लगा—"ऐसे बदमाश हैं कि घर के भीतर बैठी औरतों की तस्वीरें खींचते हैं···।"

उस समय सौंदर्य की उपासना की बात कहने से पिटे बिना नहीं बच सकता था। प्राण बचाने के लिये झूठ का ही सहारा लेना पड़ा। कैमरा उन लोगों की ओर बढ़ा कर कहा—"यहां किस की फोटो लेता ? फोटो नहीं ले रहा था, कैमरे को ठीक कर रहा था। आप लोगों को सन्देह है तो किसी फोटोग्राफर को दिखा कर तसल्ली कर सकते हैं।" उन्हें बात सुनते देख यह भी कह दिया, "भैया, कहो तो अभी खोल कर दिखा दूं ?"

उन में से एक व्यक्ति जानकार की तरह आगे बढ़कर बोला—"देखें !"

इस अज्ञान से हैरान हो कर समझाया—"यों क्या दिखाई देगा···? फिल्म खराब हो जायेगी !"

अधेड़ आदमी बिगड़ उठा—"है न बदमाश ? अभी कहता था, देख लो ! और अब दिखाता नहीं। हम तस्वीर कभी नहीं ले जाने देंगे।"

लिए हुए चित्र और फिल्म का मोह न कर पिटने से बचने के लिये कैमरा खोल कर वह फिल्म उन लोगों के हाथ में दे दी। फिल्म रोशनी में खोल दी जाने से काले-धुंधले शीशे की सपाट पटिया जैसी दिखायी देने लगी। उन्हें मेरी बात पर विश्वास हो गया।

वह फिल्म वहीं सड़क पर खेलते एक बच्चे को थमा कर उंतराई पर ठोकरें खाता अल्मोड़ा की ओर लौट आया, जैसे सफलता के स्थान से धकेल दिया गया

व्यक्ति लौटता है। अपने आतिथेय मित्र से उस घटना की कोई चर्चा करना उचित नहीं समझा।

हाथ में आया अनमोल रत्न छिन जाने की याद लिये इलाहाबाद लौटा। बहुत दिनों तक मन पर उस घटना की चोट रही; ···यह उस सुन्दरी का गर्व था या उस की सतीत्व की धारणा ? ···या उस ने अपने आकर्षण के प्रभाव में अपना अपमान समझा ?

बीच के पच्चीस वर्षों की लम्बी बात से क्या फायदा ? भविष्य को सुखमय बनाने के लिये सब सुख और विश्राम त्याग कर कठिन परिश्रम से जीवन को इतना दुखमय बना लिया कि जीवित रह सकने में भी सन्देह होने लगा। डाक्टरों ने स्वास्थ्य सुधारने के लिये सब परिश्रम छोड़ कर विश्राम करने और जंगलों और पहाड़ों की स्वच्छ जलवायु में जा कर जीवन की शक्ति को कुछ सहायता देने का परामर्श दिया।

× × ×

मैं फिर अल्मोड़ा में आ कर रहने के लिये ही विवश हो गया। ऐसी अवस्था में आ कर अल्मोड़ा के उस भाग में शरण ली है जो शहर से दूर, 'नारायण तिवाड़ी देवाल' के आगे चीड़ों और देवदारों की छाया में अलग-अलग, छोटे-छोटे मकानों के रूप में बसा है, जहां रोगी लोग स्वस्थ हो जाने की आशा में लेटे रहते हैं।

जीवन में सुख के साधनों के संचय के लिये कठोर परिश्रम के परिणाम में दुःसाध्य रोग का दुःख पा कर यह समझ लेना आसान था कि सुख की इच्छा और खोज केवल भ्रम है। संसार में जन्म पा लेने से ही दुःख का यथेष्ट भोग भाग्य में आ जाता है। दुःख और दुःखों की मूल तृष्णा को बढ़ाने से अधिक मूर्खता और क्या होगी ? इस परिणाम पर पहुंच कर अल्मोड़ा में आ बैठा हूं परन्तु·····

परन्तु देखता हूं कि प्रकृति जैसे पच्चीस वर्ष पूर्व छटा दिखा कर मोहित करती थी वैसे ही आज भी कर रही है। आज भी नीचे घाटी में भरे बादलों के अछोर सागर पर नीली-काली पहाड़ियां सिर पर चांदी के पिछौरे (चादरें) ओढ़े तैरती दिखाई देती हैं और इन पहाड़ियों को काले कपड़े पहने उज्ज्वलमुखी

युवतियों के रूप में देखा जा सकता है। यह दिखाई तो जरूर देता है परन्तु इस आत्म-प्रवंचना से लाभ ?

और यदि सचमुच ही उज्ज्वलमुखी युवती काले कपड़े पहन कर सामने बैठ मुस्कराती रहे, तो भी क्या ? इस से अनुभव होने वाले रोमांच की अनुभूति कितनी देर तक रहेगी ? उस में सार क्या ? जल्दी ही उस का अन्त नहीं हो जायेगा ? उस सुन्दरी को सराहने वाले भोगी का शरीर, बुढ़ापे से जर्जर हो कर, छप्पर के सड़े हुए फूस की तरह विरूप और नष्ट नहीं हो जायेगा ? शरीर और शरीर की अनुभूतियां, दोनों का ही अन्त निश्चित है। वेसुधी को सुख मान कर अपने आपको ठगने से लाभ ?

अब मैं अधिक नहीं चल पाता हूं, न मुझे चलना ही चाहिए इसलिये जब मकान से बाहर निकलता हूं तो अल्मोड़ा तक न जा कर 'नारायण तिवाड़ी देवाल' या उस के समीप बने 'हालेट टैंक' तक ही जा कर लौट आता हूं। पिछले पच्चीस बरस में 'नारायण तिवाड़ी देवाल' के अल्मोड़ा वाले छोर पर घने पांगरों की छांव में कुछ और दुकानें बन गयी हैं। चहल-पहल बढ़ गयी है। चाय की वह दुकान अब नये सिरे से बन गयी है और बूढ़े की जगह एक नौजवान उस पर बैठने लगा है। इस के सामने की दुकान की दूसरी मंजिल पर बनी खिड़की को कैसे न पहचानता ?···यह लोग मुझे नहीं पहचानते, यह अच्छा ही है।

अपनी उस मूर्खता को अच्छी तरह समझ लेने के लिये मैं फिर उसी दुकान पर, उसी जगह बैठ कर कई बार चाय पी चुका हूं और उस खिड़की की ओर भी देखा है। खेलते और रोते हुए बच्चे उस खिड़की से दिखाई देते हैं। एक शिथिल शरीर बुढ़िया को भी देखता हूं जो अपने शरीर की चिन्ता नहीं करती। उस के चेहरे पर कनपटियों से ओठों तक झुर्रियां हैं। गालों में गढ़े पड़ गये हैं नाक के दोनों ओर गाल झुर्रियों में सिमट गये हैं। कभी वह अपने दुकानदार बेटे के इधर-उधर चले जाने पर रखवाली के लिये निस्संकोच दुकान की दहलीज पर ही आ बैठती है। मेरा विश्वास है कि यह वही है, एक दिन जिस की छवि की स्मृति साथ ले जाने के लिये मुझे मार खाने की आशंका हो गई थी। आज यह चौंक कर अपने आपको नहीं छिपाती। उसे कोई देखना चाहे तब तो वह छिपाने की बात भी सोचे। इस का वह आकर्षण सचमुच भ्रम ही तो था।

'नारायण तिवाड़ी देवाल' से लौट कर मन सौंदर्य के आकर्षण और सुख

के पीछे भागने की निस्सारता समझ पाने के बोझ से बहुत निरुत्साह हो रहा था। पलंग पर लेट गया। सदा शुद्ध वायु की पहुंच में रहने के लिये खिड़की के सामने लेटता हूं और नजर खिड़की से बाहर स्वयं उगी 'कौसमोस', 'मुर्गकेश' और कई सफेद फूलों की झाड़ियों और उन पर लिपट गयी 'मार्निंग ग्लोरी' के नीले फूलों की वेलों पर पड़ती रहती है। इन के आगे दिखाई देती है नीचे उतरती हुई घाटी के पार दूर नीली काली पहाड़ियों की एक के पीछे दूसरी फैलती जाती लहरें और उन के ऊपर वर्फानी झाग।

× × ×

फूलों की इन झाड़ियों पर तितलियां उजलत और वेसुधी में उसी प्रकार मंडरा रही हैं जैसे मेले के दिनों में हरिद्वार के स्टेशन पर रंग-बिरंगी भीड़ गाड़ी में जगह पाने के लिये बेचैन होती है।

जैसे तितलियों को फूलों पर मंडराते आज देख रहा हूं, पच्चीस बरस पहले भी ऐसी ही तितलियों को फूलों पर ऐसे ही मंडराते देखा था। तब भी हिमालय की उन चोटियों पर वह वरफ नीले आकाश को भेद कर अभिमान से ऐसे ही सिर उठाये थी। यह क्या वे ही फूल हैं?···वही तितलियां हैं···और क्या वही बरफ है?···फूल और तितली का जीवन कितने दिन का?·····सूर्य की किरणों के स्पर्श से विह्वल हो कर वह जाने वाली बरफ की स्थिरता कितने समय की? फूल, तितलियां और बरफ अपने-अपने सौंदर्य का प्रयोजन पूरा करके चले जाते हैं।···चले कहां जाते हैं? अनेक सौ वर्ष पूर्व भी मनुष्य उन्हें देखता था, आज भी वे वैसे ही हैं। वे तो कहीं चले नहीं गये। सामने मौजूद हैं···वे तो अमर हैं। इस सृष्टि और संसार को क्षण-भंगुर बताने वाले मनुष्य व्यक्ति की तुलना में तो वे अनादि और अनन्त हैं; उन का सौंदर्य अमर है। मनुष्य ने उन की परम्परा का अभाव कब देखा है? बाल्मीकि और कालिदास के समय में भी यह सौन्दर्य ऐसा ही था और आज भी है।

समीप के सोते से बहने वाली नाली का यह कल-कल शब्द क्या कहता है? कितने सौ वर्षों से यह नाली बह रही है? इस नाली या किसी भी नदी में बहने वाले जल के कणों में किननी स्थिरता और अमरता है? इन कणों का प्रवाह ही तो अमर है, कोई कण अमर नहीं। यदि जल के कण ठहर कर अपनी अस्थिरता और क्षण-भंगुरता की बात सोचने लगे·····?

जल के इस प्रवाह में जल के प्रत्येक कण का अपने आगे और पीछे के कणों से सम्बन्ध ही उस कण का जन्म और मृत्यु है। जल के कणों का अपने आगे और पीछे के कणों से यह सम्बन्ध ही प्रवाह में उस के स्थान को निश्चित किये है। वैसे ही क्या मनुष्य की परम्परा में व्यक्ति की भी स्थिति नहीं ?·····मनुष्य समाज के प्रवाह में वह कौन कातर और मूर्ख था जिस ने मनुष्यों के प्रवाह की अमरता के विषय में शंका पैदा कर 'मनुष्य व्यक्ति' को कातर और अनुत्साही बना दिया ? 'मनुष्य' को यों ठगने का प्रयोजन क्या है ? उसे जीवन के उत्साह से विमुख करने का प्रयोजन क्या है ?·····बेचैनी के कारण लेटा न रह सका। उठ कर पलंग से पांव लटकाये बैठ गया।

इस मकान में आ कर ठहरने के समय, मुझ से पहले रह जाने वाले रोगी के रोग के बचे हुये कीटाणुओं को समाप्त कर देने के लिये नये सिरे से चूना-कलई करवा ली थी। कमरे के दायीं ओर की दीवार में अंगीठी के ऊपर एक तस्वीर, किसी अंग्रेजी पत्रिका से फाड़ी हुई, बिना फ्रेम और कांच के ही महीन कीलों से दीवार में जड़ी हुई है। मकान में कलई करवाते समय इस तस्वीर को उतार कर फेंक ही देना चाहिये था परन्तु·····तस्वीर में चाय के बगीचे की झाड़ियों से पत्ती चुनती उस युवती ने झाड़ी से आंख उठा, मुस्कराकर मेरी ओर देखा। मैं रोग और कीटाणुओं के भय को भूल गया।

उस तस्वीर को वहीं रहने दिया। इस चित्र में इतना सामर्थ्य है कि इस चित्र के रहने से कमरे में अकेलेपन का भय अनुभव नहीं होता। अब फिर उसी चित्र की ओर देख रहा हूं। वह युवती मुस्कराती आंखों में जीवन के उत्साह का उच्छ्वास भर कर स्पन्दित ओठों से एक ही बात कह रही है·····जियो !

मैंने कभी नहीं सोचा यह तस्वीर कितनी पुरानी है ? यह युवती कहां है ? हो सकता है, कालिमपोंग या दार्जिलिंग के किसी चाय के बगीचे में अभी पत्ती तोड़ रही हो। हो सकता है, उस के यौवन और रूप ने मानवता के प्रवाह में अपने स्थान को अमर बनाये रखने का काम पूर्ण शक्ति से पूरा कर दिया हो। यह भी हो सकता है कि आज उस के गालों का मांस झुर्रियों के रूप में नाक के दोनों ओर सिमिट आया हो परन्तु उस का सौन्दर्य अमर हो कर मुझ से पहले इस मकान में टिके रोगी को और आज मुझे और जाने संसार के किस-किस भाग में कहां-कहां उत्साह और जीवन की प्रेरणा देता रहा है और देता रहेगा। वह आज भी धूप में चमकने वाली हिमालय की चोटी की तरह अमर है···!

यदि उस दिन खिड़की की चौखट में अटे उस रूप और यौवन का चित्र मैं ले पाता तो आज उस विरूप हो गये शरीर की कितनी बड़ी देन 'मनुष्य' के लिये रह जाती ? मनुष्य के सामर्थ्य और उस के सौन्दर्य की अमरता के प्रति संदेह पैदा कर उसे निरुत्साहित करने वालों को, उसे ठगने वालों को कब तक क्षमा किया जाता रहेगा ?

चन्दन महाशय

चन्दन महाशय के लिये 'महाशय' उपाधि ही निश्चित हुई क्योंकि लोग-बाग उन्हें कोई दूसरी उपाधि देने के लिये तैयार नहीं थे। पंडित, बाबू, लाला, ठाकुर, मुंशी; ये सभी उपाधियां अलग-अलग जातियों की अपनी-अपनी बपौतियां हैं। किसी भी जाति के लोग अपनी जाति की क्रमागत उपाधि चन्दनलाल को न देना चाहते थे अर्थात किसी भी जाति के लोग चन्दनलाल को अपना सम्बोधन दे देने को तैयार नहीं थे। कारण, चन्दनलाल 'ओछी' जाति के समझे जाते थे।

चन्दनलाल के व्यक्तित्व की उपेक्षा कर देना भी सम्भव नहीं था कि उन्हें चन्दू, चन्दवा या चन्दना कह कर ही पुकारने से काम चल जाता। उन का लहीम-शहीम शरीर, निर्भय मुद्रा और बोलने का अधिकार पूर्ण ढंग से ऐसा था कि एक बार मुलाकात हो जाने पर दुबारा परिचय की आवश्यकता न होनी चाहिये थी। यदि किसी अहमन्य व्यक्ति को ऐसी आवश्यकता अनुभव होती तो चन्दनलाल की गालियों की अनुपम मौलिकता उन के लिये स्मृतिवर्धक ब्राह्मी बूटी का काम दे जाती।

चौड़े भरपूर कंधों से हाथी की सूंड़ों की तरह लटकती भुजाएं और बड़े-बड़े हाथ अपनी शक्ति का प्रभाव दिखाने के लिये खुजलाते रहते। अभिमानी व्यक्ति की ओर गरदन झुका कर देखने का उन का ढंग ऐसा था जैसे मुर्गियों के गिरोह में कलगीदार मुर्गा धूल में रेंगते किसी कीड़े की ओर देखता है। उन की आंखों में छाई लाली, क्रोध न होने पर भी घट न पाती। इस लाली को बढ़ाने के जितने भी भौतिक उपकरण हो सकते हैं, उन का प्रयोग चन्दन महाशय पूर्ण विज्ञापन और चुनौती के साथ करते थे। चन्दन महाशय का मुख्य प्रण था कभी किसी के आगे हाथ न फैलाने का। उन के सामने यदि कोई मदद के लिये

गिड़गिड़ाता तो वे दस-पांच रुपये से मदद के लिये तैयार रहते। अपनी इज्जत की रक्षा के लिये उन की इज्जत करना जरूरी था।

कुछ लोगों ने चन्दन महाशय को पहलवान पुकार कर उन के लिये उपाधि की समस्या निवटा देनी चाही थी परन्तु इस विषय में उन की आपत्ति का उग्र रूप देख कर फिर किसी को ऐसा साहस न हुआ। पहलवान कहलाने में महाशय चन्दनलाल को आपत्ति थी। विशालता वे इस सम्बोधन को अपनी 'विद्वत्ता' और 'गहरी राजनीतिक सूझ' के प्रति उपेक्षा और अपने शरीर की विशालता के प्रति विद्रूप समझते थे। चन्दन महाशय अंग्रेजी पढ़े, सफेद-नोकीली टोपी और कुर्ता-धोती पहनने वालों की इस चाल को भांप गये। चन्दन महाशय को पहलवान बना देने का मतलब था—उन से बुद्धि की बात कहने और राजनीतिक नेतृत्व का अधिकार छीन कर अपनी लीडरी जमा लेना। चन्दन महाशय खद्दरधारी, अंग्रेजी पढ़े लोगों की, राजनीतिक नेतृत्व पर अपना एकाधिकार बनाये रखने की इस कमीनी चाल को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। फलतः उन का नाम हिन्दू जाति के महापुरुषों की सांझी उपाधि 'महाशय' से ही विभूषित हो गया।

चन्दन महाशय आमूल क्रांति के समर्थक थे। वे नगर के राजनीतिक गुरु और पथ-प्रदर्शक होने का दावा करते थे। उन के विचार में उन की गिनती देश और प्रान्त के प्रमुख नेताओं में होनी चाहिये थी क्योंकि वे कांग्रेस के सबसे पहिले आन्दोलन के समय से जेल जाते आये थे। जनता उन की बात को देश के प्रमुख नेताओं के समान महत्व नहीं दे पाती थी, इस का कारण चन्दन महाशय की दृष्टि में जनता का भोलापन और नगर के राजनैतिक नेता बन बैठने वाले सरमायादार लीडरों की संकीर्णता और कुचक्र ही था। अंग्रेज सरकार के राज को उलट देने के उग्र कार्यक्रम पेश करने में कोई नेता उन की बराबरी नहीं कर सका और न कोई नेता उन की बराबरी में बहत्तर घंटे तक अपने पक्ष के समर्थन में बहस करने की क्षमता रखता था।

सन १९२१ में वे उसी राजनीतिक अपराध के लिये जेल गये थे, जिस अपराध में पंडित मोतीलाल, जवाहरलाल और अली भाई जेल में बन्द किये गये थे। शिरोमणि नेताओं के समान ही राजनीतिक अपराध करने पर भी जेल में चन्दन महाशय के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार किया गया और उन नेताओं के साथ सम्मानपूर्ण। उस समय के कायदे-कानून के अनुसार चन्दन महाशय को जेल का गोल गले का धारीदार कुर्ता और जांघिया पहिनने और गले में कैदी के नम्बर

की तख्ती लटकाने के लिये मजबूर किया गया। उन्हें हाथों पर से बिखर जाती रेतीली रोटी और लोहे के तसले में काली दाल खाने के लिये विवश किया गया। जेल में उन्होंने देखा कि नेताओं के लिये फलों और मिठाइयों के झावे आते थे। नेताओं से जेल के अधिकारी इस तकल्लुफ से बातचीत करते थे जैसे अपनी बेटी का सम्बन्ध जोड़ने की बात कर रहे हों। यह भेद-भाव और अन्याय देखकर चन्दन महाशय को नेताओं और अंग्रेज सरकार दोनों पर ही क्रोध आया। नेताओं के प्रति इसलिये कि जो दुश्मन के आदर और तकल्लुफ को स्वीकार करता है, वह उस से लड़ेगा क्या और पक्षपात करने वाली अंग्रेज सरकार के प्रति इसलिये कि अंग्रेज सरकार अपने आर्थिक गुट के काले रईसों को देश की जनता से फोड़ कर अपना साथी बनाये रखने के लिये फुसला रही थी।

चन्दन महाशय जेल का अनुशासन स्वीकार करना शत्रु के आगे सिर झुकाना समझते थे। जेल का अनुशासन न मानने से उन्हें काल-कोठरी में बन्द होने की सजा मिलती थी। चन्दन महाशय ने काल-कोठरी के एकान्त में बन्द रह कर मनन किया और अपनी राजनीति निश्चित कर ली। उन की राजनीति का तत्व यह था कि अंग्रेज बंगलों में रहने के लिये, मजे से गोश्त और शराब उड़ाने के लिये गरीब हिन्दुस्तान पर राज करते हैं। गोरे अमीर राजा हैं, काले अमीर उन के मुसाहब हैं और काले गरीब गुलाम हैं। झगड़ा अमीर और गरीब का है। गोरे अमीर अपना राज चलाने के लिये काले गरीब को अपना नौकर बना कर अपना राज चलाते हैं। दुनिया में इंसाफ और आजादी तभी कायम हो सकती है जब अमीर-गरीब का भेद न रहे।

चन्दन महाशय ने जेल में यातना पाकर छूटने के बाद कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं को अंग्रेज लाट और गवर्नरों की कौंसिलों का मेम्बर बन जाने के लिये तैयार देखा तो उन्हें अपनी राजनैतिक सूझ में कोई सन्देह नहीं रह गया। उन्होंने देश की आजादी के लिये किसान-मजदूर के राज का प्रचार शुरू कर दिया। उन्होंने ऐलान करना शुरू कर दिया कि अमीर और गरीब में, भेड़िये और बकरी में कोई दोस्ती नहीं हो सकती। कांग्रेस के जिम्मेदार और सम्मानित नेता उन्हें बहका हुआ व्यक्ति बताकर उन की उपेक्षा करने लगे।

चन्दन महाशय कांग्रेस के नेताओं से अपमान पाकर कांग्रेस को अपना और अपनी जैसी जनता का शत्रु मान बैठे और कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करने लगे। साम्राज्यवादी अंग्रेज के गुट के ये काले लोग जनता की स्वतंत्रता नहीं अपना

ही स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं। काले और गोरे सरमायेदारों का राज मेहनत करने वाली जनता को विवश बनाये रखने के लिये है। सरमायादारों के मंदिर, मस्जिद, गिरजा, सरमायादारों के ब्याह-शादी और परिवार के नियम और उन की अदालत सब कुछ मेहनत करने वालों को बेबस और गुलाम बनाये रखने के लिये है। चोरी न करने और झूठ न बोलने के उपदेश सरमायादारों के आराम पर आंच न आने देने के लिये हैं। सरमायादारों का राज मिटाने के लिये उन की हुकूमत के सब फंदों को तोड़ देना जरूरी है। सरमायादारों के राज की, उन के मजहब की, उन के रस्मो-रिवाज की सब बातें जुल्म हैं। उन की कोई भी बात मानना गुलामी को मंजूर करना है।

चन्दन महाशय को दृढ़ विश्वास हो गया था कि पूंजीवादी व्यवस्था में धन कमाने का साधन ईमानदारी से मेहनत करना नहीं बल्कि दूसरों की जेब से पैसा खींच लेने की चतुरता है। ईमानदारी और मेहनत सिर्फ गुलाम और गरीब के लिये है। इस राज में जो ईमानदारी से मेहनत करेगा, गुलाम और गरीब रहेगा; जो चालबाजी से मुनाफा कमायेगा, अमीर होगा। गरीबों की मेहनत से मुनाफा कमाना सब बेईमानी की जड़ है। यही मतलब पूरा करने के लिये गरीबों पर सरमायादारी की हुकूमत कायम की जाती है। मुनाफा कमाने के लिये घी में कचालू और चरबी मिलाई जाती है। सरकारी काम में पब्लिक का पैसा हड़पने के लिये सरकार के अहलकारों को रिश्वत दी जाती है।

जेल में रहकर चन्दन महाशय देख आये थे कि सजा अपराध करने के कारण नहीं मिलती बल्कि जेब में काफी रकम न होने से वकील, पुलिस और सरकार को खुश न करने के कारण मिलती है। जैसे गरीब आदमी पंडे को गोदान न कर सकने के कारण पापी बन कर नरक में जाता है, वैसे ही गरीब आदमी जेब में पैसा न होने पर पेट भरने और जिन्दगी का मजा चखने की कोशिश करने से सजा पाता है। चन्दन महाशय को पूंजीवादी सरकार और उस की व्यवस्था के किसी भी नियम को मानना अपने आत्म-सम्मान और राजनीतिक धर्म के विरुद्ध जान पड़ने लगा और ईमानदारी से मेहनत करना गुलामी को स्वीकार करना।

चन्दन महाशय ने अपनी राजनीति को वैयक्तिक जीवन में अपनाने का निश्चय कर लिया। उन्हों ने ईमानदारी से मेहनत न करने की और पूंजीवादी शोषण और गुलामी में न फंसने की प्रतिज्ञा कर ली। अपने निर्वाह के लिये

ईमानदारी से मेहनत न करके पूंजीवादी व्यवस्था को ठगने का निश्चय किया। इस प्रयोजन से उन्हों ने एक रसायनशाला आरम्भ की जिस में सब से पहले 'हाजमे की जायकेदार गोलियां' बनाई गयीं। जिस समय ये गोलियां बाजार में आयीं, इन का रहस्य किसी को मालूम नहीं था। कुछ रुपया कमा लेने के बाद चन्दन महाशय ने पूंजीवादी व्यवस्था के प्रपंच की पोल खोलने के लिये अपने इस चमत्कार का वर्णन स्वयं ही सार्वजनिक रूप से करना आरम्भ कर दिया। 'हाजमे की जायकेदार गोलियों' के आविष्कार की कहानी यह है:—

चन्दन महाशय १९२१ में, जेल में 'राजनीतिक चिन्तन' करके रिहा हुए। वे यह समझ चुके थे कि किसी भी प्रकार का शारीरिक परिश्रम करने से वे समाज में सम्मानित नेता का आदर नहीं पा सकते। समाज में सम्मानित होने के लिए दोनों बातें आवश्यक हैं; पैसा भी हो और आदमी शारीरिक मेहनत भी न करे। उन के संकट की गुरुता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जेल से रिहा होते समय उन के पास कुल जमा पूंजी तीन रुपये ही थी। इतनी पूंजी को ले कर उन्हों ने पूंजीवादी व्यवस्था को धोखा दे कर अपना निर्वाह करने के लिये कारोबार की चिन्ता आरम्भ की।

चन्दन महाशय को शहर की किराना मण्डी में एक बनिये की दुकान के सामने लाल मिर्च के बीजों की छोटी ढेरी दिखाई दी। मिर्चें बिक जाने पर चौतरे की सफाई के लिये झाड़ू लगा कर बीजों को बटोर दिया गया था। चन्दन महाशय ने बनिये से इन गिरे हुए बीजों की ढेरी का सौदा किया। दो आने में यह कूड़ा खरीद कर अपने अंगोछे में बांध लिया और सब्जी मण्डी की ओर चले।

एक कुंजड़े की दुकान के आगे फटे, सूखे और सड़े नींबुओं की डलिया उन्हें दिखाई दी। इन नींबुओं का थोक सौदा अठन्नी में हुआ और उन्होंने माल अंगोछे के दूसरे सिरे में बांध लिया। रास्ते में तीन चीजें उन्होंने और खरीदीं— चार आने का सेंधा नमक, दो आने का काला नमक, चार आने की हींग और चार आने में न बिक सकने योग्य सड़ा अमचूर।

अपनी कोठरी में लौट चन्दन महाशय नाक और मुंह अंगोछे से बांध कर मिर्चों के बीज कूटने के लिये बैठे। आपत्ति उन्हें परिश्रम करने में नहीं, परिश्रम करते देखे जाने में ही थी। बीजों को यथा-सम्भव बारीक कूट कर उस में दोनों नमक और हींग मिला दी और इस चूरन को सड़े नींबुओं के रस में गूंध कर

गोलियां बना लीं। बाजार से बादामी कागज खरीद कर छोटे-छोटे लिफाफे बनाये। चन्दन महाशय ने लिफाफे में बीस-बीस गोलियां रख इन गोलियों की थोक और फुटकर बिक्री आरम्भ की। इन चमत्कारपूर्ण गोलियों को कलकत्ते के प्रसिद्ध 'सर्वदानन्द औषधालय' का आविष्कार बताया गया। गोलियां बेच डालने में चन्दन महाशय को लगभग एक मास लगा। इस एक मास में गोलियों की बिक्री से दो वक्त भरपेट खाने के साथ दूध-दही और पाचक पेय का यथेष्ट व्यवहार करने के बाद भी चन्दन महाशय के पास तीस रुपये की पूंजी शेष रह गई। चन्दन महाशय को दवा के नाम पर जहर बेचने से कोई ग्लानि अनुभव नहीं हुई; उन की यह धारणा थी कि बदहजमी उन्हीं लोगों को होती है जो श्रम न करके आवश्यकता से अधिक भोजन करते हैं। अपनी गोली से हराम का खाने वालों को धोखा दे कर, अपना निर्वाह आराम से चलाने में उन्हें कोई अन्याय नहीं जान पड़ा।

चन्दन महाशय को अधिक रुपया पाने के लिये गहरी जेबों में हाथ डाल सकने का उपाय सोचना पड़ा। वे पूंजीवादी व्यवस्था का रहस्य समझ चुके थे कि पैसे वाले लोग अपनी जरूरी आवश्यकतायें पूरी करने और कष्ट से बचने के लिये उतना पैसा खर्च नहीं करते जितना कि व्यसनों में और अपना बड़प्पन दिखाने में करते हैं। चन्दन महाशय ने गहरी जेबों से यथेष्ट पैसा निकाल सकने के लिये 'पलंगतोड़ गोलियों' का आविष्कार किया। उन्होंने इन विशिष्ट गोलियों की गुपचुप बिक्री के लिये तंबोलियों को अपने षड़यन्त्र में सहयोगी या दलाल बनाया। इन गोलियों की बिक्री से रुपये खनकते हुए आने लगे तो चन्दन महाशय को पूरा विश्वास हो गया कि पूंजीवादी व्यवस्था की नींव अनाचार और धोखे पर ही है।

पूंजी जमा हो सकने की प्रक्रिया यह है कि खर्च आय से कम हो परन्तु चन्दन महाशय अपने खर्च पर संयम का प्रतिबन्ध लगाने के लिये तैयार नहीं थे। पूंजीपति श्रेणी के प्रति उन की विरोध की भावना का एक रूप था—रुपये से सम्भव सभी भोगों को सार्वजनिक रूप से भोग कर दिखा देना। ज्यों-ज्यों रुपया उन के हाथ में आता गया उनके भोग की मात्रा और उस से अधिक भोग का प्रदर्शन बढ़ता गया।

रुपये की शक्ति से पूंजीवादी नैतिक धारणाओं का सार्वजनिक तिरस्कार करने में चन्दन महाशय को बहुत संतोष होता था। वे इस उद्देश्य से शराब और

भांग का व्यवहार सार्वजनिक रूप से करने लगे। वे कमर में केवल लाल अंगोछा बांधे बाजार में घूमते और सूट-बूट पहने हुए बाबुओं या सफेद कुर्ता-धोती पहने रईसों से उलझ कर उन की हेठी करने में उन्हें मानसिक सुख अनुभव होता। यदि भले आदमियों को चन्दन महाशय के विना वस्त्र पहिने बाजार में घूमने पर एतराज होता तो वे और भी अधिक नग्न रूप में बाजार में दिखाई देते और बाजार में व्याख्यान दे डालते—"ऐ गरीबों की मेहनत के चोर अमीरो, तुम अपने कपड़ों के जोर पर आदर चाहते हो ? कपड़ों का आदर पूंजी का आदर है। तुम्हारे शरीर में आदर की कोई बात नहीं। तुम्हारा शरीर हमारे जैसा ही है। तुम कपड़े दिखा कर आदर चाहते हो ! हमारे पास कपड़े न सही पर हमारी आजादी में दखल देने का हक किसी को नहीं। जिसे बुरा लगता हो वह अपनी आंखें मूंद ले।" वे अपने मित्रों में कहते, "कोई अपनी मोटर और शाल-दुशाले दिखा कर लोगों को भौंचक करता है, कोई अपना नंगापन दिखा कर जैसे महात्मा लोग। हम किस से कम हैं ?"

चन्दन महाशय कांग्रेस से नाराज थे परन्तु अंग्रेज सरकार के प्रति अपने विरोध के कारण उन्हें प्रत्येक आन्दोलन में जेल जाना पड़ता था। जेल-यात्रा से वे सदा ही उग्रतर कांग्रेस-विरोधी हो कर लौटते। कोई भी राजनीतिक सभा होने पर उस में व्याख्यान देना वे इसलिये अपना अधिकार समझते थे कि वे नगर के सफेदपोश और मोटर सवार नेताओं से पीछे क्यों रहें ? पूंजीपति नेताओं को उन के पद और सम्मान छीन लेने का क्या अधिकार है ? उन के विचार में कांग्रेस जनता और किसान-मजदूर की चीज थी। वे कांग्रेस पर अधिकार जमा लेने वाले नेताओं को धोखेबाज पूंजीपति और अपना व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्वी मानते थे।

नगर में कम्युनिस्ट लोगों का आन्दोलन आरम्भ हुआ। यह पार्टी किसान-मजदूर राज्य का नारा लगाती थी और सफेदपोश मोटर सवार नेताओं के नेतृत्व को स्वीकार नहीं करती थी। यह पार्टी देश की स्वतन्त्रता केवल गोरी सरकार को हटा देने में नहीं बल्कि देश से सरमायादारी समाप्त कर देने में समझती थी। चन्दन महाशय को सन्तोष हुआ कि आखिर लोगों को उन का 'राजनीतिक दृष्टिकोण' मानना पड़ा, उन का 'राजनीतिक ज्ञान' सत्य प्रमाणित हुआ। चन्दन महाशय ने कम्युनिस्ट पार्टी को अपना अनुयायी समझा और उस से सहानुभूति करने लगे। वे कांग्रेस के नेताओं की तुलना में कम्युनिस्टों की प्रशंसा करने

लगे और कम्युनिस्ट पार्टी के पर्चों और पुस्तकों को पढ़े बिना उन का समर्थन करने लगे।

कामरेड लोगों ने चन्दन महाशय को भटका हुआ राजनीतिक-पीड़ित मान कर उन के प्रति सहानुभूति प्रकट की। उन की दृष्टि में चन्दन महाशय सरमायादारों की सार्वजनिक सम्मान की ठेकेदारी का विरोध कर रहे थे। कामरेडों को चन्दन महाशय की सार्वजनिक सम्मान पाने की इच्छा में कोई अनाचार नहीं दिखायी दिया। कामरेड लोग कांग्रेस पर पूंजीपतियों की ठेकेदारी के विरुद्ध चन्दन महाशय की पीठ ठोंकने लगे।

चन्दन महाशय की उच्छृंखलता से आतंकित 'भलेमानुस' लोगों ने चन्दन महाशय का कामरेड लोगों में सहयोग देख कर चन्दन महाशय को 'कामरेड' की उपाधि दे दी। चन्दन महाशय को 'कामरेड' की उपाधि देने का प्रयोजन दोहरा था। एक तो चन्दन महाशय की जगजानी उच्छृंखलता को कम्युनिज्म का चित्र बता देने से, भलमनसाहत का आदर करने वाले लोगों में कम्युनिज्म के प्रति अश्रद्धा हो जाय और दूसरा यह कि चन्दन महाशय को 'कामरेड चन्दन' घोषित करके उन का कांग्रेस के नेतृत्व का दावा रद्द कर दिया जाये। अपने आपको अत्यन्त चतुर समझने वाले चन्दन महाशय पूंजीवादी भलमनसाहत के पैंतरे में फंस गये। वे अपने आपको स्वयं ही 'कामरेड' कहने लगे।

चन्दन महाशय को कामरेड की उपाधि दे दी गयी तो कम्युनिस्टों को 'कामरेड चन्दन' के व्यवहार के प्रति चिन्ता होने लगी। कोई न कोई कामरेड किसी न किसी बात पर उन से उलझने लगा। सब से पहला आदेश कामरेड चन्दन को यह दिया गया कि वे कम्युनिज्म के सम्बन्ध में मार्क्स की पुस्तकें पढ़ें। यह मानसिक दासता 'कामरेड चन्दन' को वैसे ही जान पड़ी जैसे पूंजीवादी नैतिक धारणाओं के सामने सिर झुका देना था। उन्हों ने विरोध किया—"कम्युनिज्म तो इन्सान की आजादी है। उस के लिये किसी की किताब पढ़ने की क्या जरूरत ? कम्युनिज्म तो आदमी की अपनी इच्छा और समझ है और उस की आजादी है।"

चन्दन महाशय का 'कामरेड' पुकारा जाना नगर के कम्युनिस्टों के लिये बड़ी भारी मुसीबत बन गई। जनता का नेतृत्व कर पाने के लिये कामरेड लोग अपने आपको सदाचारी और आदर्श रूप में पेश करने के लिये चिन्तित थे। प्रत्येक कामरेड दूसरे कामरेड के चरित्र का उत्तरदायित्व अपने ऊपर समझता

है। कामरेड लोग सामाजिक सभ्यता और आचार के सभी बन्धन 'कामरेड चन्दन' पर लगाने लगे जिन का चन्दन महाशय सदा से विरोध करते आये थे। इस के परिणाम में कांग्रेस द्वारा घोषित 'कामरेड चन्दन' और मार्क्स के अनुयायी 'कामरेडों' में गरमागरम बहसें होने लगीं।

कांग्रेस द्वारा घोषित 'कामरेड' चन्दन महाशय बाजार में खड़े हो कर चोरी करने का समर्थन इस तर्क से करते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था सम्पत्ति के आधार पर कायम है। पूंजीवादी पूंजी के हथियार से शोषण करता है। हमें पूंजी और सम्पत्ति को मिटाना है इसलिये सम्पत्ति की चोरी करने में खराबी क्या? वे बाजार में खड़े हो कर सतीत्व की धारणा की निन्दा इसलिये करते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री को सम्पत्ति समझा जाता है। पातिव्रत धर्म का मतलब केवल पति की गुलामी है। स्त्री और पुरुष की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अर्थ स्त्री और पुरुष की पूर्ण स्वतन्त्रता है। पुरुष सम्पत्ति के जोर पर अनेक औरतें रखता है तो सम्पत्तिहीन स्त्री क्या करे? जो सम्पत्तिहीन पुरुष विवाह नहीं कर सकता वह क्या करे? वे बाजार में खड़े हो कर शराब पीने का समर्थन करते थे—पूंजीपति रेशमी पर्दों के पीछे शराब पीना केवल अपना ही अधिकार समझता है और गरीब को बाजार में खड़े हो कर शराब पीने पर हवालात भिजवा देता है।

चन्दन महाशय की सम्पूर्ण राजनीति, सन्तोष के सब साधनों पर अपना नियंत्रण जमा लेने वाले लोगों के विरुद्ध असन्तुष्टों का व्यक्तिगत विरोध था। उन्हें आशा थी, कम्युनिस्ट पार्टी के मोर्चे से ऐसे विरोध का अवसर मिल सकेगा। इस मोर्चे से वे सफेदपोश, मोटर सवार नेताओं का मुकाबिला कर सकेंगे। कामरेडों के व्यवहार से चन्दन महाशय को निराशा हुई।

नगर के कम्युनिस्ट आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों को व्यक्तिगत नहीं श्रेणीगत मानते थे। कम्युनिस्ट पूंजीवाद में व्यक्ति के दमन और अवसरहीनता का उपाय व्यक्तिगत उच्छृंखलता से करना कायरता और अपराध मानते थे। उन का कार्यक्रम शोषित श्रेणी की शक्ति और व्यवस्था को सार्वजनिक ढंग से बदलने की मांग था। वे व्यवस्था का व्यक्तिगत विरोध न कर व्यवस्था को सार्वजनिक शक्ति से बदलना चाहते थे।

चन्दन महाशय को 'कामरेड' की उपाधि दे दी जाने से और उन के उच्छृंखल व्यवहार से कम्युनिस्टों को 'कामरेड' शब्द के प्रति जनता की अश्रद्धा

की आशंका बढ़ने लगी। कम्युनिस्ट चन्दन महाशय को कामरेड मानने के लिये तैयार नहीं थे और न उन्हें अपने मंच से 'चन्दनवादी' उच्छृंखल विचारधारा के प्रचार का अवसर देने के लिये तैयार थे।

नगर में इक्कों की हड़ताल हो गई थी। कम्युनिस्टों ने हड़ताल के समर्थन के लिये सभा का आयोजन किया था। सभा में चन्दन महाशय भी मौजूद थे। उन्हों ने व्याख्यान देने के लिये कई बार मंच पर चढ़ने का प्रयत्न किया। कामरेडों ने उन्हें व्याख्यान देने का अवसर नहीं दिया। चन्दन महाशय के आग्रह करने पर कामरेडों ने इन्कार में उत्तर दिया—"आप न इक्के वाले हैं और न हमारी पार्टी के मेम्बर। आप के लिये यहां जगह नहीं है।" महाशय चन्दन ने अपनी आदत के अनुसार हाथ चला दिया।

चन्दन महाशय भरे बाजार में हाथ चला कर चाहे जिस की इज्जत झाड़ देने के व्यवहार में सफल होते आये थे। शायद कामरेड लोग चन्दन महाशय के स्वभाव से सतर्क थे। कामरेडों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और उन की अच्छी-खासी शारीरिक सेवा कर डाली।

शहर में कामरेडों की आपसी फूट का हल्ला हो गया। अवसर देख कर पुलिस ने बहुत से कामरेडों को हिरासत में ले लिया। कांग्रेस के अहिंसाप्रिय नेता चन्दन महाशय पर अत्याचार से बहुत दुखी हुए। उन्हों ने आवाज उठाई कि वे कांग्रेस के एक बहुत पुराने, अनुभवी, त्यागी, तपस्वी और जनसेवी कार्यकर्ता का कम्युनिस्टों द्वारा अपमान नहीं सह सकते। कांग्रेसजनों ने कामरेडों के विरुद्ध प्रचार करने और उन्हें जेल भिजवा देने के लिये मामला अदालत में पहुंचा दिया।

चन्दन महाशय के प्रति दुर्व्यवहार का मामला कई दिन तक अदालत में चलता रहा। मामले के दौरान में चन्दन महाशय की प्रतिष्ठा शहर में बढ़ाने के लिये सभायें करके कामरेडों के विरुद्ध निन्दा के प्रस्ताव पास किये जाते थे। मामले का परिणाम जो भी हुआ हो परन्तु इस बीच चन्दन महाशय सचमुच प्रतिष्ठा के आसन पर पहुंच कर कांग्रेस के प्रतिष्ठित सदस्य बन गये।

चन्दन महाशय मुकद्दमा तो हार गये परन्तु कांग्रेस के नेतृत्व की बाजी जीत ही गये।

कुल-मर्यादा

पुरुषार्थ और भाग्य की बात चलती है तो गंगाधर मिश्र उत्तेजित हो जाते हैं और अपने प्रयत्नों की विफलता की कहानी सुनाने लगते हैं। अभिप्राय होता है कि वे सदा सद्भावना से भाग्य से लोहा लेने की चेष्टा करते रहे परन्तु होन-हार की जकड़ से कभी छूट नहीं पाये।

गंगाधर अपनी उठती जवानी के दिनों की कहानी सुनाने लगते हैं। उन का परिवार परम्परावादी था। परम्परावाद का राजनीतिक पहलू राजभक्ति होता है। गंगाधर मिश्र के पिता अपने इलाके के अच्छे-खासे जमींदार थे। अंग्रेजी राज में सरकारी अफसरों के कृपा-पात्र हो कर देहाती प्रजा में अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए थे। उन्हों ने मामले-मुकदमे चला कर अपनी जमींदारी का काफी विस्तार किया था। अंग्रेजी सरकार की छत्र-छाया में अपनी जमींदारी का विस्तार करने के लिये, अपने अधिकार पर अंग्रेजी सरकार की मुहर पाने के लिये उन्हें अंग्रेजी सरकार की अदालत के पंडों-वकीलों को अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग दक्षिणा में देना पड़ा था। गंगाधर के पिता कानून की सहा-यता से ही मेहनत करने वाले किसान की पैदावार हथियाते रहे थे इसलिए उन के मन में कानून के प्रति बहुत श्रद्धा और आदर था। उन का अनुभव था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के बड़े-बड़े वकील कानूनी सलाह-मात्र देने के लिये सौ रुपया प्रति घण्टे के हिसाब से फीस ले लेते हैं इसलिये उन्हों ने अपने पुत्र को कानून की शिक्षा ग्रहण करने की सलाह दी। गंगाधर के पिता अपने पुत्र का भविष्य उज्ज्वल करने के लिये इस से ऊंचा और क्या आदर्श समझते परन्तु यह आदर्श पूरा नहीं हो सका।

गंगाधर सन् १९३०-३१ में इलाहाबाद में पढ़ रहे थे। उस समय स्वराज्य

के आन्दोलन में बहुत प्रवल ज्वार आया था। उस आन्दोलन ने लोगों की भावनाओं और दृष्टिकोणों को ही वदल दिया था। गंगाधर भी इस प्रभाव से न वच सके। सौ रुपया प्रति घण्टे के हिसाब से फीस लेने वाले वड़े-वड़े वकील-वैरिस्टर अपने वंगलों में वैठ कर चाहे सोने के निवाले निगलते हों, जनता के हृदय से तो जयकार देश की मुक्ति के लिये आन्दोलन करने वाले नेताओं के नाम की ही उठती थी। गंगाधर भी स्वयं इस आन्दोलन की सभाओं और जुलूसों में भाग लेते थे। उन्हों ने खद्दर का कुर्ता, धोती और गांधी टोपी पहनना शुरू कर दिया था। उन के राजभक्त पिता को पुत्र का वह व्यवहार कुल की प्रतिष्ठा के लिये कलंक जान पड़ा। उन्हें यह बहुत अपमानजनक लगा कि एक सम्मानित जमींदार का पुत्र शासक और सरकार के पक्ष में न हो कर दलित और छोटे लोगों के पक्ष में हो। गंगाधर के पिता को और भी बड़ा आघात तब पहुंचा जब गंगाधर ने छुट्टियों में घर जाने पर विवाह करने से इनकार कर दिया।

लड़कपन में ही गंगाधर की सगाई दूसरे जिले के एक बड़े भारी जमींदार के घर हो चुकी थी। सगाई के समय गंगाधर कोई राय देने योग्य ही नहीं थे। गंगाधर के पिता का विचार था—लड़का हमारा है और सगाई हम कर रहे हैं; इस में लड़के की राय का सवाल क्या? उन की अपनी सगाई और उन के पिता की सगाई सदा से इसी प्रकार हुई थी। परन्तु जब विवाह का प्रश्न उठा, गंगाधर ने इनकार कर दिया—'जब तक देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता हम विवाह नहीं करेंगे।' इलाहाबाद में बीसियों देश-भक्तों ने देश के स्वतन्त्र न हो जाने तक खद्दर पहिनने; जूता न पहिनने और नमक न खाने, की प्रतिज्ञायें की थीं। गंगाधर भी देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का सैनिक बनने का व्रत ग्रहण कर चुके थे। स्वराज्य आन्दोलन के प्रधान नेता महात्मा गांधी स्वराज्य के सैनिकों को भोग-विलास से दूर रह कर ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश देते थे। गंगाधर ने भी स्वराज्य प्राप्त तक ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा कर ली थी।

देहात के लोगों के लिये गंगाधर का स्वराज्य के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का आशय समझ पाना आसान नहीं था। परिवार सम्बन्धी और विरादरी के लोग ऐसी नई बात से विस्मित रह गये। सभी लोग उन्हें समझदारी से काम लेने की राय देने लगे। गंगाधर अपनी प्रतिज्ञा से डिगने के लिये तैयार न हुये तो पास-पड़ोस में अफवाह फैलने लगी—नामर्द है; इसी से तो ब्याह करने से डरता

है।.....भला उठती जवानी में कोई ब्याह से इनकार करता है ? दूर-दूर अफवाह फैलने लगी—'जमींदार का जवान लड़का नामर्द है।' गंगाधर झेंपने और लोगों से मुंह चुराने लगे। अपने देहात में रहना उन के लिये कठिन हो गया।

१९३०–३१ में देश की स्वतन्त्रता का आन्दोलन वहुत प्रवल था। अंग्रेज सरकार के पांव डगमगाते दिखाई दे रहे थे। गंगाधर जैसे लोगों को स्वराज्य वरस-डेढ़ वरस से अधिक दूर नहीं जान पड़ता था परन्तु आन्दोलन स्वराज्य पाये बिना ही शिथिल पड़ गया। गंगाधर खद्दर के कपड़े पहनने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ थे और विवाह करने से भी इनकार कर रहे थे। विवाह से उन का इनकार परिवार के लिये असह्य यातना का कारण वन रहा था। कभी चिन्ता से मां के बीमार हो जाने का समाचार मिलता और कभी क्रुद्ध पिता की धमकियां मिलतीं। नामर्दी के कलंक की बात भी फैल रही थी सो अलग।

गंगाधर यह समझ चुके थे कि देश की स्वतंत्रता की राजनीतिक लड़ाई तो जीवन भर का व्रत है, साल-छः महीने की बात नहीं। उस संघर्ष को जीवन का अंग बना कर ही निवाहा जा सकता है। यह भी देख रहे थे कि देश के स्वतन्त्रता संग्राम के वड़े-बड़े सभी नेता विवाहित हैं। उन के परिवार हैं और अनेक नेता अपनी स्त्रियों को साथ लेकर देश का नेतृत्व कर रहे हैं, फिर विवाह न करने की प्रतिज्ञा से अपने परिवार को नाराज करने और स्वयं नपुंसक कहलाने से क्या लाभ ? सोच-विचार कर उन्होंने विवाह कर लेने की अनुमति अपने परिवार के लोगों को दे दी।

जव गंगाधर मिश्र ने विवाह से इनकार किया था तो उन के विरोध में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। उस तूफान के परिणाम में उन के नपुंसक होने की अफवाह फैल गई थी। वे विवाह कर लेने के लिये तैयार होगये तो वह नपुंसकता की अफवाह उनके विवाह में बाधा वनने लगी।

गंगाधर की नपुंसकता की अफवाह उन की प्रस्तावित ससुराल या सगाई के गांव तक पहुंच चुकी थी। जव गंगाधर विवाह करने से इनकार कर रहे थे तब उन की ससुराल वाले इस बात से परेशान थे। उन्हें चिन्ता थी कि जवान लड़की को कब तक घर बैठाये रखें ? यदि पुरानी सगाई तोड़ कर लड़की की नयी सगाई का यत्न करते तो अफवाह फैल जाती कि लड़की में कोई ऐब है इसीलिये पहली सगाई टूट गयी। गंगाधर विवाह के लिये तैयार हो गये तो

ससुराल के लोगों को गंगाधर की नपुंसकता की अफवाह ने चिन्तित कर दिया; '.....आखिर लड़का व्याह से इन्कार क्यों कर रहा था ?.....भगवान न करे, लड़का कहीं सचमुच ही वेकाम है तो लड़की का भाग्य जान-बूझ कर कैसे फोड़ दें ?'

अब गंगाधर के पिता विवाह के लिये जल्दी कर रहे थे और उन के समधी साइत, लगन और अपने परिवार की अनेक समस्याओं का बहाना कर टाल रहे थे। इस वीच में लड़की के परिवार का यत्न था कि लड़के की नपुंसकता के विषय में अफवाह की जांच-पड़ताल कर ले। उस पर अब तक जोगीपन का खब्त क्यों सवार था ? उसे ब्रह्मचारी ही रहना है तो व्याह क्यों कर रहा है ? ससुराल वालों ने अपने गोइन्दे छोड़े। गंगाधर के गांव के भी दो-एक आदमियों को फोड़ कर जांच-पड़ताल करने के लिये कहा गया। कुछ लोगों ने लड़के का डाक्टरी मुआइना करा लेने की सलाह दी परन्तु इस में दोनों परिवारों की वदनामी का डर था।

बहुत कोशिश करने पर भी ऊख और अरहर के खेतों में गंगाधर के कभी कोई 'रहस-लीला' करने की घटना का समाचार नहीं मिला। गंगाधर की किसी वदकारी का प्रमाण न मिलने से नपुंसकता की वदनामी का संदेह जमने लगा। लड़की के परिवार के गुप्तचर प्रति क्षण ही गंगाधर पर नजर रखते थे, उन के उठने-वैठने पर, घूमने-फिरने पर। यह वात गंगाधर के लिये संकट हो गई। देहात में शहरों की तरह परदेदार संडास और गुसलखाने नहीं होते। सुवह-शाम जव गंगाधर लोटा लेकर निवृत्ति के लिये खेतों की ओर चलते तो एक-दो आदमी उन के पीछे हो लेते या कहीं खेत की मेंड़ पर ही पेशाव करने वैठ जाने पर कोई न कोई सामने से या इधर-उधर आड़ से ताक-झांक करने लगता। ऐसी अवस्था में गंगाधर अपमान अनुभव कर चिढ़ जाते और उन्हें भगाने के लिये गाली देने या ढेले फेंकने लगते परन्तु सत्य के जिज्ञासुओं ने अपने चर्म-चक्षुओं से स्थिति का समाधान किये बिना उन का पीछा नहीं छोड़ा। गंगधर की नपुंसकता की अफवाह चश्मदीद गवाहों द्वारा गलत साबित हो गई और उन का विवाह धूमधाम से हो गया।

गंगाधर का विवाह तो हो गया परन्तु गंगाधर गांधी जी के उपदेश के अनुसार, गुलाम देश में गुलाम सन्तान पैदा न करने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ था। वे विवाह करके भी गांधी जी के उपदेश के अनुसार ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते

ही रहे। दो वर्ष बीत गये और गंगाधर की बहू की गोद सूनी ही रही तो परिवार फिर चिन्ता में डूब गया। गंगाधर के परिवार में लड़की के बांझ होने की और ससुराल में लड़के के वास्तव में ही नपुंसक होने की अफवाहें उड़ने लगीं। लड़के-लड़की पर से यह दैवी प्रकोप दूर करने के लिये दैव-शक्तियों का आह्वान किया जाने लगा ; गंडे-ताबीज की व्यवस्था होने लगी।

गंगाधर की पत्नी बांझ समझी जाने की लज्जा से मरी जा रही थी। वह अपने भाग्य को कोस रही थी कि जाने किस डाइन ने इन का मन मुझ से फेर लिया है जो बात ही नहीं करते ? उस ने गौरी-पूजा की। गंगाधर की मां ने चौराहा पुजवाया और पीर की कब्र पर चढ़ाने के लिये चादर भेजी। कभी टोना कर के घर में चक्की के नीचे कुछ दबाया जाता। कभी कोई जादू गंगाधर के पलंग के पाये में बांधा जाता और कभी पलंग की दामन में। कभी वे अपने कपड़ों में कोई जन्तर-मन्तर छिपाया हुआ देखते। कभी पंडित कोई पूजा कर जाते और कभी फकीर फूंक मार जाते। गंगाधर यह सब देखते और इन मिथ्या विश्वासों से उन्हें चिढ़ और अपना अपमान अनुभव होता।

पुराने विचारों और मर्यादा के रक्षक जमींदार के परिवार में कड़े परदे की प्रथा थी। घर में जनाना और मर्दाना भाग अलग-अलग थे। दिन में गंगाधर कभी अपनी पत्नी से नहीं मिल सकते थे। रात में वे ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करने के विचार से बाहर मर्दाने में ही सो जाते। वास्तव में परम्परागत पद की मर्यादा निबाहने के कारण वे अपनी पत्नी का मुख भी न देख पाये थे। वे उसे कुछ समझाते तो कैसे ? मिथ्याविश्वासों के टोने-टटके से ऊब कर एक दिन वे घर के दूसरे मर्दों की तरह रात में चुपके से जनाने में गये। पत्नी पर्दे की मर्यादा की रक्षा के लिये अंधेरे में भी घूंघट किये थी।

गंगाधर ने पत्नी को समझाया—तुम्हें अपने जो वहम पूरे करने हों, कर लो ! चक्की, चूल्हा, तोरण, तीरथ, मसान जो भी पूजना हो, पूज लो ! अपनी पूजा और टोने का प्रभाव परखने के लिये मैं तुम्हें एक वर्ष का समय देता हूं। इस के बाद मैं बात करूंगा। गंगाधर अपनी बात निबाहने के लिये अगले दिन गांव छोड़ कर इलाहाबाद चले आये और उत्साह से कांग्रेस के काम में लग गये।

गंगाधर की पत्नी और मां वर्ष भर देवताओं की शक्ति को सत्य प्रमाणित करने के लिये जादू-टोने में पूर्ण आस्था से लगी रहीं। दोनों पक्ष अपनी-अपनी प्रतिज्ञा और विश्वास पर दृढ़ थे।

गंगाधर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, एक वर्ष बाद घर लौटे। प्राकृतिक नियम के अनुसार, नियमित समय पर उन के घर सन्तान भी हो गई। उन के माथे से नपुंसकता का कलंक धुल गया।

गंगाधर मिश्र के मन में अपने दो व्रतों का पालन न कर सकने का खेद बहुत दिनों तक नहीं रहा। उन्हों ने अपने जीवन को परिस्थितियों के अनुसार सुधारने का प्रयत्न आरम्भ किया। उन के जीवन का लक्ष्य देश की सेवा ही था। सौभाग्य से उन के नौकरी न करने अथवा जेल चले जाने पर परिवार के भूखे मरने की नौबत न आ सकती थी। वे पूरी शक्ति से देश-सेवा में ही लगे थे। देश-सेवा के लिये उन्हें रहना पड़ता था इलाहाबाद में। अपने जीवन के इस कार्य को अधिक सन्तोषजनक बना सकने के लिये उन की इच्छा थी कि उन की पत्नी भी देहात के संकीर्ण और कुसंस्कारपूर्ण वातावरण से मुक्त हो कर उन के साथ इलाहाबाद में ही रहे।

इस इच्छा के लिये यथेष्ट कारण थे। इलाहाबाद में स्त्रियां स्वतन्त्रता के आन्दोलन में आगे बढ़ कर भाग ले रही थीं। कांग्रेस के प्रमुख नेता सभामंच पर प्रायः सपत्नीक बैठते थे। कांग्रेस के आन्दोलन में पत्नी को साथ ले कर चलने वाले नेता प्रगतिशील समझे जाते थे और उन का विशेष आदर था। गंगाधर मिश्र पत्नी होते हुए कांग्रेस में सपत्नीक नेता क्यों न बनते? इस महत्वाकांक्षा के पूर्ण होने में कांग्रेस अथवा जनता की ओर से कोई रुकावट नहीं थी। गंगाधर ने इस विषय में अपने साथियों और सहयोगियों से सलाह ली। उन्हों ने उन्हें स्त्री को शहर में ला कर शिक्षित और आधुनिक बनाने के लिये उत्साहित किया। रुकावट थी तो केवल अपनी पत्नी और परिवार की ओर से जो परदे के रूप में कुल की मर्यादा को देश की समस्याओं और सभ्यता के आधुनिक विकास से अधिक महत्व दे रहे थे।

गंगाधर मिश्र ने अपना विचार पूर्ण करने के लिये मन-ही-मन यह षड़यन्त्र रचा कि वे माघ-मेले के अवसर पर पत्नी को गंगा-स्नान के लिये इलाहाबाद ले आयेंगे। स्त्री को एक बार परम्परागत मर्यादा के गढ़े से निकाल कर वे जैसा उचित समझेंगे, करेंगे।

गंगाधर ने घर आकर अपनी स्त्री को 'माघी-पूर्णिमा' का स्नान कराने की इच्छा प्रकट की। परिवार को इस पर कोई आपत्ति न हुई। बहू को स्नान करने के लिये भेजते समय गंगाधर की मां ने अनेक आवश्यक वस्तुयें गठरी-मुठरी

में बांध साथ कर दीं और देहात से एक लड़का भी काम-काज के लिये, नौकर के रूप में साथ कर दिया।

गंगाधर गोद में बच्चा लिये अपनी पत्नी और नौकर के साथ इलाहाबाद स्टेशन पर पहुंचे। उन के सामने समस्या थी, पत्नी को कहां टिकायें? इलाहाबाद से जाते समय कोई प्रबन्ध कर जाने का ख्याल नहीं आया था। घोर परदे की मर्यादा के अनुसार चलने वाली स्त्री को, जिस की बोली भी कभी बाहर के किसी आदमी ने न सुनी थी, सीधे कांग्रेस के दफ्तर में—जहां केवल सिर उघाड़ कर देश की सेवा करने वाली देवियों का ही आना-जाना था—लिवाये चले जाने का उन्हें साहस न हुआ। किसी मित्र या परिचित के यहां सहसा परिवार को लेकर पहुंच जायें, यह भी उचित न जंचा इसलिये स्त्री और नौकर को वेटिंग-रूम में ठहरा कर और स्वयं शहर जाकर प्रबन्ध कर लेना ही उन्हों ने उचित समझा।

× × ×

गंगाधर नगर कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में पहुंचे। शर्माते-शर्माते अपने सहयोगियों और मित्रों को अपनी समस्या बताई और उचित स्थान के प्रबन्ध के लिये अनुरोध किया।

मित्रों ने विस्मय से कहा—"अरे, तो तुम भाभी को साथ क्यों नहीं लेते आये?.....उन्हें स्टेशन पर क्यों छोड़ आये?"

"कैसे ले आता?" कुछ झेंप के साथ गंगाधर ने उत्तर दिया, "वह हाथ भर का घूंघट काढ़े हैं। यहां वह कहां बैठती? जरूरत पड़ने पर वह किसी से एक गिलास पानी भी नहीं मांग सकतीं। पहले कभी उस ने घर की दहलीज तो क्या, जनाने की दहलीज भी नहीं लांघी। सच मानो, ब्याह हुए चार बरस होने को आ रहे हैं, पर हम ने अभी तक उस का मुंह भी नहीं देखा।"

गंगाधर के सहयोगी कार्यकर्ताओं और मित्रों ने आंखों ही आंखों में परस्पर बातें की और उन्हें सांत्वना दी—"घबराने की क्या बात है? सब ठीक हो जायेगा। तुम रात भर के सफर से थके आये हो। नल पर नहाओ-धोओ। अभी वालंटियरों को भेज कर तुम्हारे परिवार को यहां बुलाये लेते हैं। सुविधा से दूसरा प्रबन्ध भी हो जायेगा।" वैसा ही किया भी गया।

गंगाधर के कांग्रेसी मित्रों द्वारा भेजे गये दो वालंटियर स्टेशन के वेटिंग-रूम में पहुंचे। गंगाधर की बताई हुई बिस्तरे, बक्स, नौकर और उन की स्त्री की गोद में बच्चे और दुपट्टे की पहचान से वालंटियरों ने गंगाधर के परिवार को पहचान लिया। उन्हों ने नौकर को समझाया कि मिश्र जी ने हम लोगों को तुम्हें लिवा ले जाने के लिये भेजा है। वे तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वालंटियर मिश्र जी के परिवार को स्टेशन से लिवा ले गये।

डेढ़ एक घण्टे के बाद कांग्रेस के दफ्तर में चिन्ताजनक खबर पहुंची कि वालंटियर जब स्टेशन पर पहुंचे तो गंगाधर मिश्र की स्त्री, बच्चा और नौकर वहां मिले ही नहीं। गंगाधर ने सुना, तो उन के पांव तले से धरती खिसक गई। मुख से निकल गया—"हैं" और आंखें, होठ खुले रह गये।

गंगाधर की घबराहट में उन के मित्रों और सहयोगियों ने सांत्वना दी—"यों घबराने से काम नहीं चलेगा। यह इलाहाबाद है और दिन भी मेले के हैं। यहां पंडे और दूसरे बदमाश जो न करें थोड़ा परन्तु घबड़ाओ नहीं। आखिर हम लोग मदद के लिये हैं ही। अभी कांग्रेस के शाखा-दफ्तरों और पुलिस की चौकियों को फोन करते हैं। आखिर उन्हें कोई ले कहां जायेगा? स्टेशन पर भी चौकसी का प्रबन्ध किये देते हैं।"

गंगाधर का दिल धक्-धक् कर रहा था। आंखों में बार-बार आंसू उमड़ आते। वे स्त्री को आधुनिक बना कर उस की उन्नति करने के लिये देहात से शहर लाये थे और स्टेशन पर ही उसे खो बैठे। वे अब जा कर अपने परिवार को क्या मुंह दिखायेंगे? उन्हें इस संकट में कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उन के हाथ-पैर ढीले पड़ रहे थे परन्तु उन के मित्र और सहयोगी उन्हें सांत्वना देते हुए बड़ी तत्परता से जगह-जगह सन्देश भेज रहे थे और बार-बार फोन उठा कर, गंगाधर की पत्नी और नौकर का हुलिया बता-बता कर शीघ्र खोज करने का अनुरोध कर रहे थे। वे मिश्र जी को भी बताते जाते कि अब 'दारागंज' थाने को फोन कर दिया, अब 'मुट्ठीगंज' को अब 'कटरे' को। गंगाधर उन्हीं पर भरोसा किये हुए थे। उन्हें थानों के फोन नम्बरों का क्या पता था? बीच-बीच में चिन्ता और आशंका की बात भी चलती जा रही थी कि बदमाश और गुंडे मेले के दिनों में कैसे औरतों को उड़ा ले जाते हैं और कैसी-कैसी कठिनाइयों से वे ढूंढ़ी जाती हैं और कभी-कभी तो कुछ पता ही नहीं चलता।

गंगाधर के मित्रों ने ही यह सन्देह प्रकट किया—"भाई मिश्र जी, कहीं तुम्हारे नौकर ने ही तो बदमाशी नहीं की ? कभी-कभी घर के नौकर ही भयंकर संकट पैदा कर देते हैं।"

यह बात गंगाधर की समझ में नहीं आ रही थी कि बारह-चौदह वर्ष का उन का देहाती नौकर, जो पहले कभी किसी शहर में नहीं गया, जो रेल पर भी पहली ही बार चढ़ा है, इतना चालाक कैसे हो जायेगा कि उन की स्त्री को भगा कर बेच डालने की हिम्मत कर ले।

दोपहर बीत चुकी थी। साथियों ने गंगाधर से कुछ खा-पी लेने के लिये कहा। उन के लिये हलवाई के यहां से भोजन मंगवा दिया गया परन्तु गंगाधर के लिये मुंह में कौर डालना सम्भव न था। वे बार-बार सोचे जा रहे थे—उस ने तो सुबह से पानी भी नहीं पिया होगा और मेरे पहले खा चुके बिना वह अन्न नहीं छुयेगी। उस का क्या हाल होगा ? उसे कोई जहां ले जायेगा, वहां वह किसी से शिकायत भी नहीं कर सकेगी। बस, रोती ही रहेगी। वह नाम ले कर यह भी नहीं बता सकती कि किस की औरत है। गोद का चार महीने का बच्चा तो अभी रोना-हंसना भी नहीं जानता···। उन्हों ने सामने रखे पूरी-तरकारी के दोनों को एक ओर सरका दिया।

तीसरा पहर बीत गया था। गंगाधर के मित्रों और सहयोगियों ने देखा कि मिश्र जी सचमुच बच्चों की तरह बिलख-बिलख रोने लगे, तब कहीं फोन करने और सन्देश सुनाने के बाद उन्हों ने गंगाधर को सांत्वना दी—"सुनो, सेवा-समिति वाले पं० ज्वालाप्रसाद के यहां से फोन आया है कि सेवा-समिति के वालंटियर एक भटकी हुई स्त्री को उन के यहां लाये हैं। उस की गोद में छोटा-सा बच्चा भी है। बेचारी जब से आई है, रो-रो कर परेशान हुई जा रही है। हिन्दू औरत के लिये यह भी तो एक मुसीबत है कि अपने मर्द का नाम भी तो नहीं बता सकती। चलो, देख तो लो !"

उन्हें तैयार होते देख सहयोगियों और मित्रों ने स्वयं ही प्रश्न किया—"भैया, सोच लो। खामखाह घबराहट में किसी पराई औरत को अपनी न कह बैठना। कहीं और मामला खड़ा न हो जाये।···तुम अपनी औरत को पहचानते भी हो ?·· कभी देखा है ?" खबर सुन कर गंगाधर को कुछ उत्साह हुआ था परन्तु इस प्रश्न से उन का उत्साह भंग हो गया। पहचान वे कैसे सकेंगे ? अपनी स्त्री का मुंह तो उन्हों ने देखा ही न था।

सोच कर गंगाधर ने धैर्य से उत्तर दिया—"शक्ल नहीं पहचानेंगे, कपड़े जो पहन के आई है वह तो पहचानेंगे। अच्छा, हम उसे घूंघट में नहीं देख सकते थे उस ने तो घूंघट में से हमें देखा होगा। वह तो हमारी आवाज पहचानेगी।"

सहयोगियों ने मुस्कराहट दबा कर स्वीकार किया—"मिश्र जी की बात ठीक ही है।" और वे उन्हें पंडित ज्वालाप्रसाद के यहां ले गये।

सुबह स्टेशन से ला कर वालंटियर गंगाधर मिश्र की स्त्री और बच्चे को पंडित ज्वालाप्रसाद के यहां पहुंचा दिया था। पंडित जी की घर की स्त्रियों ने उस के लिये नहाने-धोने और कपड़े बदलने की व्यवस्था कर सांत्वना दी थी—"मिसिर जी हमारे जाने-पहचाने हैं। यह तुम्हारा अपना ही घर है। नहा-धो कर सफर के कपड़े बदल लो और आराम करो। उस के लिए जनाने में सब व्यवस्था कर दी गई थी। मिश्र जी की स्त्री को कोई चिन्ता भी नहीं हुई थी। वह जानती थी कि परदे वाले घर के कायदे के अनुसार दोपहर भोजन के समय से पहले 'वे' भीतर क्या आयेंगे परन्तु जब पति दोपहर में भी न लौटे तो वह चिन्तित होने लगी।

चौथे पहर के करीब जब घबराये हुए गंगाधर दो आदमियों के साथ जनाने की ड्योढ़ी में उस के सामने आ खड़े हुए तो उस ने लम्बा घूंघट काढ़ मुंह दीवार की ओर कर लिया। मिसरानी नहा-धो कर मिश्र जी के पहचाने सफर के कपड़े बदल चुकी थीं। गंगाधर सामने घूंघट में लिपटी अपनी स्त्री की ओर देख रहे थे परन्तु उसे अपनी स्त्री कहने का साहस नहीं कर पा रहे थे।

उन के सहयोगियों ने सम्बोधन किया—"तो फिर क्या कहते हो?"

"कैसे, क्या कहें भाई!" गंगाधर ने अधीर हो कर उत्तर दिया, "यही कह सकती हैं।"

"तुम्हारी होती तो बोलती न?" एक बोले।

"तो फिर कहीं और चल कर ढूंढ़ें?" दूसरे ने सलाह दी। सामने खड़ी स्त्री का सिर और अधिक झुक गया।

गंगाधर लौटने को हुए परन्तु साहस कर सहसा बोल उठे—"हमें पहचानती हो?.....बोल नहीं सकतीं तो रो ही दो!"

स्त्री ने आंचल से आंसू पोंछ कर रोने का संकेत किया। गंगाधर की जान में जान आई। उन्हों ने पूछा—"मुन्ना कहां है?"

स्त्री ने हाथ से भीतर के दरवाजे की ओर संकेत कर दिया। कमरे से बाहर निकल गंगाधर के सहयोगियों ने बहुत गम्भीरता से समझाया—"भैया, देख कर पक्का कर लो ! ....अब भी कहीं धोखा तो नहीं ?"

परन्तु उन के हंसी न संभाल सकने के कारण गंगाधर उन के जाल को समझ गये। दोनों हाथ से नमस्कार कर बोले—"गुरु लोगो, भर पाया तुम्हारी कृपा से। अब उस नौकर लड़के का पता और बता दो।"

नौकर का पता लगाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

गंगाधर मिश्र ने पत्नी का घूंघट जबर्दस्ती हटा दिया—"देखो, यह परदा कितने अनर्थ की जड़ है।" उन्हों ने देश के पूज्य बड़े-बड़े नेताओं के नाम बता कर समझाया, "देखो, उन लोगों की स्त्रियां परदा नहीं करतीं। भगवान राम तो जानकी जी को गोद में ले कर राज-सभा में बैठते थे। तुम्हीं क्यों इस तरह अज्ञान में फंसी हो और हमारी हंसी कराती हो ?"

मित्रों और सहयोगियों की सहायता से गंगाधर मिश्र ने कटरे में एक मकान ले लिया। उन का इरादा यहीं बस जाने का था पर एक महीना भी नहीं बीत पाया था कि बहू के घर न लौटने से गंगाधर के पिता और माता चिन्तित हो परिस्थिति समझने के लिये इलाहाबाद आ पहुंचे। देहात में फैलती अफवाहों से उन के कुल-परिवार की मर्यादा पर कलंक लग रहा था। लोग कह रहे थे कि इतने बड़े खानदानी जमींदार का पुत्र उघाड़े मुंह बहू को बगल में लिये इलाहाबाद के बाजारों में घूमता है।

गंगाधर के माता-पिता ने इलाहाबाद आ कर यह अनाचार अपनी आंखों से देखा तो उन के पांव तले से धरती खिसक गई। गंगाधर ने देश के बड़े से बड़े नेताओं के उदाहरण दे कर पिता से पर्दे के विरुद्ध तर्क करना चाहा। पुत्र का यह दुस्साहस देख कर गंगाधर के जमींदार पिता की आंखें क्रोध से लाल हो गयीं—"मैं तेरा बाप हूं या तू मेरा बाप है ? ··कुल-कलंक, बाप से जबान लड़ाता है ?"

उन्हों ने पुत्र के इस अनाचार के विरोध में गंगा के किनारे बैठ कर अनशन कर प्राण त्याग देने की धमकी दे दी। गंगाधर मिश्र को इस सत्याग्रह से पराजय स्वीकार कर लेनी पड़ी। उन के माता-पिता बहू को साथ ले कर गांव को लौट गये और उन्हों ने अपने 'कुल की मर्यादा' को फिर घर के जनाने परदे में सुरक्षित कर दिया। बेचारे गंगाधर सपत्नीक नेता बनने के प्रयत्न में भी विफल हो, माथा ठोंक कर रह गये।

डिप्टी साहब

दत्ता साहब की दृष्टि में धन-वैभव से अधिक महत्व था आदर और सम्मान का। वे विशेष परिश्रम से प्रतियोगिता परीक्षा पास करके डिप्टी के पद पर प्रतिष्ठित हुये थे। उन के जीवन के दो पहलू थे। एक पहलू था साधारण मनुष्य का, इस दृष्टि से वे साधारण मनुष्य की तरह परिस्थितियों का प्रभाव अनुभव कर उन के प्रति सहानुभूति अनुभव करते थे। जीवन के दूसरे पहलू में वे शासक थे। इस पहलू से समाज के नियामक और रक्षक के रूप में उन पर समाज में अनाचार, अपराध और अनैतिकता की रोक-थाम का उत्तरदायित्व था। साधारणतः इन दोनों पहलुओं में सामंजस्य बनाये रखना सुविधाजनक नहीं होता।

असलियत तो यह है कि लोगों पर अपराध, अनाचार और अनैतिकता के नाम पर बंधन लगाने की आवश्यकता न हो तो सरकार और सरकारी अफसरों की आवश्यकता ही क्या है? समाज में अनाचार, अपराध और इन्हें रोकने वाली सरकार और सरकारी अफसर सब समान कारणों और परिस्थितियों से पैदा होते हैं। मजे की बात यह है कि अनाचार और अपराध के कारण पैदा होने वाली सरकार और उस सरकार के अफसर अनाचार और अपराध से मुक्त और पवित्र होते हैं, या समझे जाते हैं। विचित्रता इस में कुछ है भी नहीं। खेत या बाग की क्यारियों में कूड़ा-करकट और मल-मूत्र ही डाला जाता है परन्तु उस में से फल-फूल उगते हैं। उन फूलों को गले में पहना जाता है और खाने की मेज पर शोभा के लिये रखा जाता है। समाज के अनाचार, अपराध से उपजे सरकारी अफसरों और न्यायधीशों को शासन और न्याय के सिंहासनों पर सजा देने में कोई अस्वाभाविकता नहीं समझी जानी चाहिये।

जो भी हो, डिप्टी न्यायाधीश दत्ता साहब ने यह कभी अनुभव नहीं किया था कि वे समाज के अपराध, अनाचार और अनैतिकता की खाद से उपजे हुये एक सम्मानित फूल हैं जिन्हें न्यायाधीश की कुर्सी के फूलदान में सजा दिया गया है। समाज का अंश होने के नाते उन के व्यक्तित्व में भी समाज के अनाचार अनैतिकता और अपराध के तत्व मौजूद हो सकते हैं जैसे फूलों को यदि सम्भाला न जाये तो वे तुरंत खाद बन जाते हैं। दत्ता साहब को अपराध, अनाचार और अनैतिकता के प्रति क्रोध था परन्तु उन्हें संकीर्णता से भी घृणा थी।

संकीर्णता का सम्बन्ध प्रायः साधनों से होता है। मनुष्य के साधन उस के आचार-व्यवहार पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। परिस्थितियों और जीवन रक्षा के लिये आवश्यक व्यवहार से ही मनुष्य के विचार बनते हैं। उदाहरणतः समाज में उदारता की ख्याति और आदर पाने के लिये यह आवश्यक है कि आप मित्रों को प्रायः आमंत्रित करें। यदि आप अपने समकक्ष लोगों की तरह उदारता प्रकट नहीं कर सकते, स्पष्ट शब्द में कहिये। यदि आप अपने सामाजिक स्तर और दर्जे के लोगों के समान खर्च नहीं कर सकते, तो आप संकीर्णता अनुभव करने लगते हैं, स्वयं अपनी दृष्टि में ही अपमानित या अपने आप को नीचा अनुभव करने लगते हैं। एक सरकारी अफसर के लिये इस प्रकार की अनुभूति बहुत ही स्वाभाविक है क्योंकि उस का स्तर सर्वसाधारण से ऊपर अथवा असाधारण समझा जाता है। अपना सम्मान बनाये रखना उस के लिये आवश्यक है। उक्त कठिनाइयों से बचने के लिये डिप्टी न्यायधीश दत्ता साहब संयम को बहुत महत्व देते थे। निस्सन्देह संयम आत्म-सम्मान की रक्षा का मुख्य साधन है। इस विषय में उन के आदर्श थे अंग्रेज अफसर।

दत्ता साहब सरकारी अफसर के लिये अपमान और पतन का मूल मानते थे रिश्वत स्वीकार करना। जो अफसर अनाचारी और अपराधी के सम्मुख हाथ फैला देगा, वह न्याय की रक्षा क्या करेगा? उन्होंने गूढ़ चिन्तन से निश्चय कर लिया था कि रिश्वत की फिसलती राह पर अफसर को ढकेलता है फिजूल खर्ची करने के लिये धन का लोभ। उस से बचने का उपाय आर्थिक संयम है। उनके आर्थिक संयम का एक रूप था हिन्दुस्तानी समाज की अतिसामाजिकता या भाई-चारे के व्यवहार से यथासंभव दूर रहना। उन का बंगला सिविल लाइन्स में था। वे अंग्रेज अफसरों की तरह अपना मासिक बजट बना कर, अंग्रेज अफसर के संयम और रोब से ही अपना खर्च निभाते थे। सौभाग्य से उन्हें सुशिक्षता

पत्नी मिली थी। पति-पत्नी दत्ता साहब और मिसेज दत्ता, डिप्टी न्यायाधीश की सीमित तनख्वाह में सम्मानित पद के असीम आदर को बड़े यत्न से निभाये जा रहे थे।

सुशिक्षित पति-पत्नी आधुनिक, सभ्य पारिवारिक जीवन के रहस्यों का परिचय विवाहित जीवन के सम्बन्ध में अंग्रेजी पुस्तकों से पा चुके थे इसलिये उन के परिवार पर संतान का बोझ उन के अनजाने में 'भगवान की इच्छा' के रूप में नहीं आ पड़ा था। विवाहित जीवन के चार या पांच वर्ष पति-पत्नी के सख्य और आमोद में व्यतीत हो जाने के बाद जब डिप्टी साहब और मिसेज़ दत्ता एक सुन्दर बच्चे के बिना अपने जीवन को अपूर्ण समझने लगे तभी एक फूल-सी सुन्दर कन्या को उन के यहां जन्म लेने का अवसर मिला। इस संतान के प्रति दत्ता साहब और मिसेज दत्ता के शौक, उत्साह और आदर का वही दरजा था जो बड़े से बड़े अंग्रेज अफसर के घर हो सकता था। एक सुथरी आया, बिल्कुल सफेद कपड़े पहिने विलायती ढंग का एक पलना, बढ़िया पिरेम्बुलेटर (हाथ से ढकेली जाने वाली बच्चों की गाड़ी) उन के बंगले के गमलों से घिरे बरामदे में दिखाई देने लगे।

डिप्टी साहब और मिसेज दत्ता प्रायः ही संध्या समय पिरेम्बुलेटर में 'डौली' को लिटाये ठंडी सड़क पर घूमते दिखाई देते थे। डौली अभी तीसरे ही वर्ष में थी, बड़े आदमियों के कायदे के मुताबिक डिप्टी साहब का नौकर उसे समय पर 'कन्वेंट' के किंडरगार्टन (बहुत छोटे बच्चों के स्कूल) में छोड़ आने लगा। डिप्टी साहब और मिसेज दत्ता दोनों को ही इस बात का गर्व और सन्तोष था कि वे अपनी पुत्री डौली के लिये जीवन में विकास और पूर्णता पाने के सभी अवसर देकर अपना स्नेह और कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। पति-पत्नी प्रायः ही इस बात पर मत प्रकट करते थे कि जब तक संतान के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करने का सामर्थ्य न हो, संतान उत्पन्न क्यों की जाये? जो लोग संतान के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं और सन्तान उत्पन्न भी किये जाते हैं, उन्हें दत्ता साहब और मिसेज दत्ता क्रूर अपराधी करार देते थे।

जीवन में संतोष और पूर्णता की सीमा हम स्वयं ही निश्चित करते हैं। जीवन में पूर्णता की इस सीमा के विस्तार की अचेतन, मधुर इच्छा से मुग्ध किसी एक क्षण में, जब मिसेज दत्ता अपने प्यारे जीवन-संगी के गले में बाहें डाले हुए थीं, गुलाबी आंखों और संकोच से अस्पष्ट स्वर में कह बैठीं—'एक

लड़का और……'

मिस्टर दत्ता को अपनी प्यारी पत्नी का यह प्रस्ताव अपने मन की ही बात जान पड़ी। आयोजना के अनुसार चलने वाले इस परिवार में उचित समय पर एक पुत्र ने भी जन्म ले लिया। इस नवागंतुक के आने के उत्साह ने दत्ता साहब के पारिवारिक सुख-संतोष को और भी बढ़ा दिया। दत्ता साहब और मिसेज दत्ता अपने इस संतोष को प्रकट करने के लिये प्रायः ही आपस में एक दूसरे को याद दिलाते रहे—बस,……अब और नहीं ! एक लड़की और एक लड़का…! पर्याप्त।

आप चाहे इसे समझदार आदमियों की भूल-चूक कहिये या अपनी कृपा दिखाने पर भगवान का हठ, डौली का भाई 'मधु' अभी 'किंडर-गार्टन' में जाने के लायक भी नहीं हो पाया था कि एक दिन मिसेज दत्ता ने कुछ झेंप और चिन्ता की मुद्रा और स्वर में पति को चिंताजनक रहस्य की सूचना दी—"सुनो तो, कुछ गड़बड़ी मालूम होती है……"

दत्ता साहब ने आशंका से फैले नेत्रों से पत्नी की ओर देख कर प्रश्न किया—"क्यों ?…कैसे ?…" और फिर बीते महीनों में रहस्यमय अवसरों की स्थितियों को ब्योरे से याद कर लेने पर मामूली सी उपेक्षा के लिये दुखी हो कर दोनों को चिंता में चुप रह जाना पड़ा।

पति-पत्नी ने कई दिन तक आपस में विचार और चिंता कर अपने दोनों बच्चों और भविष्य में हो सकने वाली संतान के प्रति कर्तव्य और न्याय की धारणा से यही निश्चय किया कि उन के परिवार में और सन्तान के लिये स्थान नहीं है। मामूली सी चूक के कारण प्रकृति को हस्तक्षेप का अवसर मिल गया था। अपनी सन्तान और अपने प्रति न्याय के कर्तव्य की धारणा से प्रकृति की इस ज्यादती को रोकना भी जरूरी था। इस अवस्था में डिप्टी न्यायाधीश की कानूनी न्याय की धारणा सिर उठा कर सामने खड़ी हो गयी।

टिप्टी न्यायाधीश घण्टों मौन रह कर और कई रात बिस्तर में जागते रह कर सोचते रहे कि स्वयं उन के अपने जीवन के सुख की रक्षा, जीवन में औचित्य की रक्षा, अपनी सन्तान के प्रति कर्तव्य के मार्ग में कानूनी न्याय का सर उठा कर खड़े हो जाना कहां तक उचित है ? न्यायाधीश का व्यक्तिगत विवेक और अपने जीवन के अवसर की रक्षा की प्रवृति आग्रह कर रही थी कि उन्हें अधिकार है, जितना बोझ वे उठा सकते हैं, उस से अधिक बोझ अपने

कन्धों पर न लादा जानें दें परन्तु भारतीय दण्ड-विधान की धारायें पुलिस की लाल पगड़ी और वर्दी पहन कर कह रही थीं कि गर्भ गिराना अपराध है……! न्यायाधीश की कर्तव्य-परायणता से ही नहीं बल्कि ऐसी अनैतिकता और अपराध के प्रति घृणा से भी डिप्टी साहब कितनी ही बार 'भ्रूणहत्या' (गर्भपात) के अपराधियों को कठोर सजायें दे चुके थे ।

कर्तव्य और अपराध के द्वन्द्व के विचार ने कुछ ही दिन में डिप्टी न्यायाधीश दत्ता की कनपटियों पर आती सफेदी के बढ़ाने में कितनी सहायता दी, यह दत्ता साहब और मिसेज दत्ता दोनों ही जानते थे। कानूनी न्याय की धारणा को मान्यता देने का पूरा यत्न करके भी दत्ता साहब यह स्वीकार नहीं कर सके कि कानून को उन के पारिवारिक जीवन के सामंजस्य को बरबाद कर देने का अधिकार है । उन्हों ने समस्या के समाधान का उपाय सोचना आरम्भ कर दिया । यह उतना सरल न था ।

डिप्टी न्यायाधीश फूहड़, कमीने लोगों की राह नहीं चल सकते थे । उस में मिसेज दत्ता के जीने-मरने की आशंका उत्पन्न हो सकती थी । ऐसे कई मुकद्दमों में पुलिस के गवाहों के बयान से वे कई फूहड़ तरीकों, पुराने गुड़ और विषैली जड़ी-बूटियों के प्रयोग की बातें सुन चुके थे । इन फूहड़ उपायों से अनेक सम्भावित माताओं के प्राण बलिदान हो जाने की घटनायें उन के सामने आ चुकी थीं । वे अपनी आदरणीय प्यारी पत्नी, अपने प्यारे बच्चों की मां का जीवन दांव पर लगाने के लिये तैयार नहीं थे । वे मिसेज दत्ता का जीवन दक्ष और अनुभवी लेडी डाक्टर के अतिरिक्त किसी फूहड़ दाई के हाथों सौंपने के लिये तैयार नहीं थे । हो सब कुछ सकता था, क्योंकि समाज में होता ही है परन्तु न्यायाधीश के पद पर बैठे दत्ता साहब किसी डाक्टर से अवैधानिक कार्य करने के लिये कैसे अनुरोध करते ?

आवश्यकता का उपाय करना ही पड़ता है । डिप्टी साहब ने भी उपाय कर लिया । उपाय हुआ एक अत्यन्त निकट सम्बन्धी की मार्फत । एक दक्ष और अनुभवी लेडी डाक्टर की फीस और उचित प्रबन्ध के लिये आवश्यक व्यय का अनुमान हुआ १,२०० रुपये । यह अनुमान सुन कर दत्ता साहब कुछ देर दांतों से होंठ दबाये रह गये । व्यय की इस रकम के मानसिक आघात के बाद जब उन्हों ने यह रकम खर्च न करने के परिणाम को सोचना आरम्भ किया—प्रसव के समय डाक्टर की फीस, नयी सन्तान और नयी आया के प्रति मास का

खर्च और बीसों वर्ष तक तीसरी सन्तान की उचित शिक्षा और दीक्षा का खर्च, तो इस १,२०० रुपये की रकम के आगे विंदियों पर बिंदियां जुड़ती चली गयीं। उन के स्तर के ऊंचे वर्ग में अनायास उत्पन्न हो जाने वाली सन्तान के लिये अनायास स्थान नहीं बन सकता था जैसे कि निम्न वर्ग में होता है। निम्न वर्ग के परिवार की डलिया में जहां एक मुट्ठी बेर पड़े रहते हैं वहां दो-चार बेर घट-बढ़ जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता परन्तु सम्मानित वर्ग का परिवार अंगूर की पिटारी की तरह है, जहां प्रत्येक अंगूर रुई में लपेट कर अलग-अलग तरतीब से रखा जाता है। स्थानाभाव के कारण उन के दब कर दागी हो जाने का भय रहता है·····आखिर दूरदर्शिता के विचार ने दत्ता साहब को परास्त कर दिया; उधार लेकर भी यह व्यय करना ही पड़ा। बड़ी सावधानी से, गोपनीय ढंग से एक विश्वास योग्य लेडी डाक्टर की सर्जरी में वह काम हो जाने की योजना हो ही गयी।

ग्रहों का योग या घटनाओं का विद्रूप ही कहिये। जिस दिन डिप्टी न्यायाधीश दत्ता साहब के पारिवारिक जीवन के आर्थिक स्तर और औचित्य की रक्षा के लिये मित्र के मकान पर गुप्त रूप से आपरेशन हो रहा था। उन की अदालत में भ्रूण-हत्या का एक मामला पुलिस ने लाकर पेश कर दिया। घटना निम्न मध्यम श्रेणी के मुहल्ले में हुई थी। पुलिस ने अभियुक्ता के विरुद्ध पर्याप्त सबूत अदालत में पेश किये थे। साधनहीन अपराधिनी अपनी सफाई के लिये वकील नहीं ला सकी। सफाई के वकील की अनुपस्थिति में कोर्ट इन्सपेक्टर ने अपराध को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित कर दिया। सरकारी वकील ने अदालत से अभियुक्ता को ऐसा कठोर दण्ड देने की प्रार्थना की जिस से जनता भ्रूण-हत्या के घृणित अपराध से डरे।

अपराध के प्रमाणों के सम्बन्ध में शंका का अवसर कम ही था। पुलिस ने गर्भ कूड़े के ढेर पर पड़ा हुआ पाया था। पुलिस ने तहकीकात खूब सवेरे ही कर ली थी। कूड़े के ढेर से सड़क पर और सड़क के पार गली में एक कच्चे टूटे-फूटे मकान तक जाते हुए खून से लथपथ जनाना पांव के निशान पाये गये थे। इन निशानों को देखने वाले प्रत्यक्ष साक्षी मौजूद थे। पुलिस ने मुस्तैदी से उसी समय उस घर की तलाशी भी ले ली थी और खून से लथपथ धोती और दूसरे कपड़े भी कब्जे में कर लिये थे।

उस गरीब विधवा अभियुक्ता की जमानत देने वाला भी कोई नहीं था।

अभियुक्ता ने रोने के सिवा कोई और बयान नहीं दिया लेकिन उस के विरुद्ध मुहल्ले के गवाहों के दस्तखती बयान मौजूद थे। गवाहों ने अभियुक्ता के दुश्चरित्र होने का कारण और प्रमाण भी बताये। अभियुक्ता ब्राह्मणी आठ-दस वर्ष पूर्व, पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में विधवा हो गयी थी और उस के चरित्र के विषय में सन्देह के कारण मुहल्ले में कई झगड़े हो चुके थे।

अपराध में सहयोग देने वाले एक मर्द के बिना ऐसा अपराध नहीं हो सकता था। उस अपराधी मर्द का पता लगाने का यत्न पुलिस ने न किया हो सो बात नहीं परन्तु मर्द ऐसा अपराध करने के बाद औरत की तरह अपराध की गठरी तो साथ लिये नहीं फिरता और सभी अपराधी इतने निस्सहाय नहीं होते कि पुलिस के जाल को तोड़ कर साफ न बच सकें।

अभियुक्ता घूंघट में मुंह छिपाये मैली धोती और चादर में शरीर को लपेटे सिर झुकाये अदालत के कटघरे में खड़ी थी। अभियुक्ता को दण्ड दिलाने के लिये न्याय और कानून के रक्षक, पुलिस के सिपाही पकड़ कर लाये थे। अभियुक्ता को भाग जाने का अवसर न देने के लिये चौकसी में वे उस के पीछे खड़े थे। दूसरी ओर खड़े कोर्ट-इन्सपेक्टर समाज की नैतिकता और न्याय की रक्षा की दुहाई दे कर अभियुक्ता के लिये मुनासिब सजा का तकाजा कर रहे थे।

डिप्टी साहब मुनासिब सजा सदा से देते आये थे। उन की प्रसिद्धि अपराध के प्रति उपेक्षा और दया दिखाने के लिये नहीं, कठोर दण्ड देने के लिये ही थी। दण्ड देने के लिये जो फैसला वे लिख देते, वह मानों अभियुक्त से व्यक्तिगत बैर के कारण ऐसा कि ऊंची अदालत में अपील की जाने पर रिहाई की गुंजाइश शायद ही कभी रह जाती हो। न्याय के प्रति उन की इस निष्ठा के पुरस्कार में उन का रिकार्ड बहुत अच्छा समझा जाता था। प्रायः महत्वपूर्ण मामले उन की ही अदालत में पेश किये जाते थे पर उस दिन डिप्टी न्यायाधीश पथराई हुई आंखों से उस अभियुक्ता की ओर देख रहे थे और उन का ध्यान बार-बार अपने घर की गोपनीय योजना की ओर चला जाता था। उन के मस्तिष्क में आशंका कौंध-कौंध जाती थी कि यदि किसी अप्रत्याशित कारण से बात खुल जाय तो……?

फटी चादर के घूंघट में छिपे अभियुक्ता के चेहरे पर वैसी ही घबराहट और चिंता की कल्पना कर रहे थे जैसी उन्होंने 'कुछ गड़बड़ी' की सूचना देते समय मिसेज दत्ता के आतुर चेहरे पर देखी थी। उन्हें याद आने लगा, परिणाम से

बचने के उपाय जानते हुये, साधन होते हुये भी किसी एक क्षण में चूक हो जाने से बच नहीं सके और अभियुक्ता उपायों से अजान साधनों से हीन और बेवस थी·····और अभियुक्त की वैसी ही विकल अवस्था, जैसी अवस्था में उन्हें स्वयं भी उपाय कर लेने का धैर्य न रहा था ।·····यदि अभियुक्त सिविल-लाइन्स के किसी बंगले में रह सकती है और एक अनुभवी और दक्ष लेडी डाक्टर की सेवा का व्यय १,२०० रु० दे सकती·····?

डिप्टी न्यायाधीश की गर्दन विचार में कुछ अधिक झुक गयी । उन के हाथ में थमी कलम कोर्ट इंस्पेक्टर की दलीलों को कागज पर लिखती जा रही थी परन्तु उन का मस्तिष्क तर्क कर रहा था :—कानूनी न्याय की पकड़ से व्यक्ति को अपने आर्थिक स्तर और औचित्य की रक्षा करने का अधिकार है या नहीं ?··· और इस उद्देश्य से किये गये अपराधों के कारण कितने अनिवार्य और स्वाभविक हैं ! पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में विधवा बना दी जाने वाली युवती के लिये समाज के अनुशासन को तोड़े विना जीवन में संतोष का कोई अवसर कहां है ? समाज में कानून बनाने वाले और न्याय की रक्षा करने वाले नित्य अपनी वासना को पूर्ण कर के भी सहस्र आंखों से इस युवती की स्वाभाविक प्रवृत्ति दमन न कर सकने के अपराध को खोज कर रहे थे । इस युवती के सामने बाधा और भय केवल खर्च का नहीं था···! इस के लिये पकड़ी जाने का परिणाम था भली स्त्री के सभी अधिकारों से वंचित हो जाना !·····यह उपाय अथवा अपराध करना उस के लिये अनिवार्य था क्योंकि वह भली समझी जाने का आदर खोना नहीं चाहती थी ।····अवसर न होने पर भी वह अपने को रोक न सकी ! यदि वह संतान देने वाले पुरुष के अभाव में एक संतान को गोद में लेकर समाज में खड़ी होना चाहे तो भी उस के लिये अवसर और स्थान नहीं । भ्रूण-हत्या न करने का भी दण्ड उसे समाज से बहिष्कार के रूप में वैसे ही मिलता जैसे कि भ्रूण-हत्या करने का दण्ड समाज उसे देना चाहता है ।

डिप्टी साहब ने फैसले की तारीख तीन दिन बाद की दे दी । इस बीच उन के अपने घर की गोपनीय योजना सफलतापूर्वक पूर्ण हो चुकी थी । वे जब भी इस मामले का फैसला लिखने के लिये कलम उठाते, उन का मस्तिष्क बोल उठता :—अवांछित संतान के बोझ से आत्मरक्षा करना सामाजिक कर्तव्य है ।··· विधवा को गर्भ गिराने के लिये विवश वही लोग करते हैं जिन्होंने विधवा से स्त्री का गर्भवती होने का प्राकृतिक अधिकार छीन लिया है । भ्रूण-हत्या के

अपराध का दण्ड उस न्याय व्यवस्था को देना उचित है जो अवांछित गर्भ से मुक्ति पाने के कार्य को अपराध के रूप में करने के लिये विवश कर देती है···। उन्हें क्रोध था पुलिस पर, क्योंकि पुलिस, अपना सम्मान बचाने के लिये प्राण जोखिम में डालने वाली इस गरीब स्त्री को पकड़ कर उन के सामने ले आयी थी और उसे दण्ड दिये जाने का आग्रह कर रही थी। उन्हें इस गरीब स्त्री का अपराध यही जान पड़ता था कि वह सुशिक्षित लोगों की तरह गर्भ से बचने के रहस्यों को नहीं जानती थी और चूक हो जाने पर परिणाम से बचने के लिये उस के पास धन नहीं था। वह स्त्री उन्हें उस कतार बछिया की भांति जान पड़ती थी जो कसाई की छुरी से बचने के लिये भाग निकली हो और पुलिस उस आदमी की तरह जो उस बछिया को घेर कर फिर कसाई के सामने ले आया हो; परन्तु जो समाज की मान्यताओं और कानून के विरुद्ध हैं, ऐसी बातें, अदालत के फैसले में नहीं लिखी जा सकती थीं।

फैसले की तारीख के दिन अभियुक्ता को फिर डिप्टी साहब के सामने पेश किया गया। उन्होंने अभियुक्ता की ओर देखे बिना ही सिर झुका कर फैसला सुनाया—···"सबूत की कमी की वजह से तुमको बरी किया जाता है।"

डिप्टी न्यायाधीश ने कोर्ट-इन्सपेक्टर की ओर देखा, माथे पर बल पड़ गये। फैसला इन्सपेक्टर की ओर फेंक दिया। पुलिस और कोर्ट-इन्सपेक्टर इस औरत को बरी होते देख विस्मय से मुख खोले रह गये।

अभियुक्ता को बरी कर देने का कारण डिप्टी साहब ने फैसले में लिखा था:—'सुबूत की कमी' उन्हों ने फैसले में पुलिस की धांधली की निन्दा भी की थी:—'काल्पनिक प्रमाणों के आधार पर किसी असहाय स्त्री पर घृणित अपराध का आरोप पुलिस के लिये प्रशंसा योग्य नहीं। यदि पुलिस को अभियुक्ता के अपराधिनी होने का सन्देह था तो अदालत को कोई कारण इस बात का नहीं दिखाई देता कि इसे हिरासत में लेने के बाद, इस का तुरन्त डाक्टरी मुआइना करा कर सार्टिफिकेट क्यों नहीं लिया गया ? पुलिस ने कूड़े के ढेर पर गर्भ मिलने की जगह से स्त्री के घर तक खून से लथपथ पांव के चिह्नों को तो अभियुक्ता के अपराध का प्रमाण मान लिया परन्तु अदालत के सम्मुख इस बात का कोई प्रमाण नहीं दिया कि गली में खून से लथपथ पांव के चिह्नों और इस स्त्री के पांवों में क्या समता थी ? अभियुक्ता के घर में खून से लथपथ कपड़ों का पाया जाना इस बात का निर्विवाद प्रमाण नहीं मान लिया जा सकता कि वे कपड़े इसी

स्त्री की सम्पत्ति थे । उस बड़े और कच्चे मकान की कोठरियों में ऐसे कई गरीब परिवार रहते हैं·····।

"पुलिस ने यह बात भी स्पष्ट नहीं की है कि उस मकान से बाहर जाने का कोई और दरवाजा नहीं है । यदि पुलिस ने अपराध की खोज करने में मुस्तैदी दिखायी होती तो इस अपराध के सहयोगी मर्द का पता लगाने में भी विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिये थी । अभियुक्ता के चरित्र के सम्बन्ध में सुनिश्चित प्रमाण दिये बिना उस पर लांछन लगाना इस बात का सन्देह पैदा करता है कि मुहल्ले के कुछ दुश्चरित्र लोगों की नजर इस युवा स्त्री पर रही होगी । ऐसे ही लोगों ने अपने प्रयत्नों में असफल रहने के कारण अभियुक्ता के विरुद्ध किसी दूसरे के अपराध का आरोप किया है और वास्तविक अपराधी कानून की पकड़ के बाहर चैन कर रहा है·····।"

× × ×

डिप्टी न्यायाधीश साहब के मस्तिष्क पर अपनी गोपनीय परिस्थिति में उस घटना का प्रभाव कुछ ऐसा पड़ा कि पुलिस द्वारा पेश किये गये मामलों में उन्हें प्रायः ही पुलिस की ज्यादती दिखाई देने लगी । अपराधों के सम्बन्ध में उन की धारणा ने कुछ दूसरा ही रूप ले लिया । यह दृष्टिकोण था—जीवन की भूख और मांग के लिये अवसरहीन और साधनहीन लोगों के प्रयत्न ! उन्हें जान पड़ने लगा कि समाज का अनुशासन और कानून, साधनहीन और अवसरहीन लोगों को सन्तोष पाने के प्रयत्न से विवश रखने के लिये ही है और पुलिस समाज के इस अनुशासन का क्रूर और तर्कहीन हथियार-मात्र है । डिप्टी साहब की यह मनोवृत्ति बढ़ती ही गयी, यहां तक कि १९४२-४३ में जब पुलिस और सब अपराधों की उपेक्षा कर अदालतों में केवल राजनीतिक विद्रोह के अपराधियों को ही घसीटे ला रही थी, उस समय भी डिप्टी साहब को पुलिस का व्यवहार जीवन के अवसर की मांग का क्रूर दमन ही जान पड़ रहे थे । डिप्टी न्यायाधीश आंख मूंद कर अन्याय का समर्थन करने के लिये तैयार नहीं हो सके ।

१९४४ में डिप्टी साहब के 'एफिशियंसी बार' लांघ कर जिला न्यायाधीश नियुक्त होने का समय आया । वे इस अवसर की प्रतीक्षा उमंग से कर रहे थे और डाक में प्रतिदिन 'प्रोमोशन' (उन्नति) का आर्डर खोज रहे थे । एक दिन, उन

के भाग्य का निपटारा करने वाला सरकारी आज्ञा-पत्र आया। इस पत्र का आशय था—गत वर्षों में उन का व्यवहार शासन के काम में सहयोग की अपेक्षा अड़चन डालने का ही रहा है, अत: अभी अगले ग्रेड में उन की उन्नति के प्रश्न पर कोई विचार नहीं किया जा सकता। आर्डर पढ़ कर डिप्टी साहब को जान पड़ा कि उन की कुर्सी के नीचे धरती फट गयी है और वे उस में समाये जा रहे हैं। क्रोध से उन का माथा तमतमा उठा—यह है न्याय......!

डिप्टी साहब, मन शान्त होने पर शासन के प्रबन्ध में अपनी अयोग्यता की बात सोचने लगे—शासन का तो अर्थ ही है कि समाज में जिन लोगों ने जीवन के साधन समेट लिये हैं, उन के लिये ही जीवन के अवसर की रक्षा की जाये और जो लोग जीवन के साधन और अवसर न होते हुये भी जीवन में भूख और आवश्यकता अनुभव करते हैं और सन्तोष पाना चाहते हैं, उन्हें सन्तोष पा सकने वालों की परिधि के भीतर घुसने से रोका जाये? पुलिस इसी परिधि की पहरेदार है। न्यायाधीश का कर्तव्य इन पहरेदारों के काम पर औचित्य की मुहर लगाना है। समाज में मनुष्य को उचित और अनुचित सभी कुछ करने का अधिकार है, यदि उस के पास पर्याप्त साधन हों। शासक और न्यायाधीश इसी बात का वेतन पाते हैं कि वह साधन-सम्पन्नों के अधिकारों पर औचित्य की तथा साधनहीनों के प्रयत्नों पर अपराध की मुहर लगायें। साधन-सम्पन्नों से वेतन पाकर साधनहीनों के प्रति सहानुभूति दिखाना, शासन के धर्म के प्रति अयोग्यता और गद्दारी नहीं तो क्या है? जो न्यायाधीश और शासक आंख मूंद कर शासन के इस धर्म के प्रति भक्ति दिखाने के लिये तैयार नहीं, वह सफल और योग्य शासक और न्यायाधीश कैसे हो सकता है? साधन-सम्पन्नों से रोटी पा कर साधनहीनों से सहानुभूति रखना क्या धर्म है?

जीत की हार

"वकालत के काम में न्याय, अन्याय से उतना मतलब नहीं रहता जितना कि कानूनी पैंतरे द्वारा मुकद्दमे की हार-जीत से !" वकील साहब विश्राम के लिये कुर्सी पर पसरते हुए बोले, "परन्तु जब मुकद्दमा जीत लेने पर भी मन हार मान जाये, मनुष्य अपनी आंखों में ही गिर जाता है। इच्छा होती है कि मुवक्किल से मिली फीस को ठोकर मार दें।"

वकील साहब ने गर्दन को कुर्सी की पीठ पीछे झटकाया, मानो ग्लानि से झुक गई गर्दन सीधी करने के लिये मस्तिष्क पर लदे बोझ को गिरा देना चाहते हैं। मेज पर कोहनी टिका ली। हथेली से कनपटी को सहारा दिया और मन-मस्तिष्क में भरे बोझ को निकाल देने के लिये सुनाने लगे। अदालती अन्दाज में कही गयी पूरी बात का मतलब था:—

वह लड़का; लड़का क्या, अच्छा-खासा नौजवान—और फिर अठारह-बीस बरस का आदमी बुद्धि से लड़का ही तो होता है—तिलोकसिंह 'बडोरी' के हाईस्कूल में मैट्रिक में पढ़ रहा था। बडोरी अल्मोड़ा जिले में बागेश्वर से आगे 'बेरीनाग' की सड़क पर बहुत छोटी-सी बस्ती है पर हाईस्कूल है। सड़क के दोनों ओर, आमने-सामने प्रायः पन्द्रह-बीस दुकानें हैं। पहाड़ी ढंग की दुकानों में छतें ढालू होने के कारण भीतर काठ की पड़छती डाल लेने से ऊपर रहने के लिये एक मंजिल आप ही निकल आती है। दुकानों में ऊपर की मंजिल में और पिछवाड़े कोठरियों में दुकानदारों की घर-गृहस्थी होती है। दो-तीन बजाजी की दुकानें, तीन-चार परचून, नमक, तेल, तम्बाकू की। इन दुकानों में किसानों के हल के लिये लोहे से लेकर दवा-दारू तक मिल सकती है। दो-तीन दुकानें बिसाती की, तीन-चार दर्जी, मोची और लुहार-उहार की। चाय और मिठाई-नमकीन

की दुकानें तो पहाड़ों में सड़क किनारे प्रायः रहती ही हैं। दो-ढाई बरस से पांच-सात पंजाबी शरणार्थी आ बसे हैं तो कुछ रंग-रौनक बढ़ गयी है। कभी-कभी हरी पहाड़ियों पर स्वच्छ नीले आकाश के नीचे झूमते चीड़ के वृक्ष भी ग्रामोफोन के रिकार्डों और बैट्री के रेडियो से 'लारी लप्पा·····' और 'लाल दुपट्टा मलमल का·····' की और दूसरी फिल्मी तानें भी सुन पाते हैं।

अलमोड़ा के देहात में मुसलमानों की संख्या रुपये में पैसा भर भी नहीं है; जो हैं, प्रायः दर्जी, मिस्त्री, धुनखे और नगारची का काम करते हैं और ऐसी छोटी-छोटी बस्तियों के बाजारों में सिमटे रहते हैं। ब्राह्मण, राजपूत जैसे शिल्पकारों (अछूतों) के हाथ का पानी नहीं पीते; वैसा ही परहेज इन लोगों से भी है; बल्कि कुछ कम ही समझिये क्योंकि उठना-बैठना तो इन लोगों से बराबरी का है। वहां के मुसलमान कसम भी खाते हैं तो देवी देवता की। न बुर्का-पर्दा, न कोई रिवाज का दूसरा भेद ! कभी-कभात इनकी औरतें-लड़कियां सुथना भी पहन लेती हैं।

पहाड़ी नगरों में देश के व्यवसायिक नगरों की सी समृद्धि नहीं है परन्तु देहात में, किसानों की जमीन अपनी होने के कारण पूरब के देहातों जैसी गरीबी भी नहीं। लोगों का मन निराशा से मर नहीं गया है। पढ़ने और उन्नति का साहस अभी वाकी है। 'वडोरी' के हाईस्कूल में बहुत से लड़के सामल (आटा-चावल) घर से बांध लाते हैं और अपना रोटी-भात अपने हाथों कर लेते हैं। जो अच्छे खाते-पीते घरों के हैं, बोर्डिंग में रहते हैं। तिलोकसिंह 'वारिया' के थोकदार (नम्बरदार) का एकलौता लड़का है और घर का अच्छा पोढ़ा। वह बोर्डिंग में ही रहता था।

हाई स्कूल और बोर्डिंग वडोरा की बस्ती से कुछ हट कर है। सन्ध्या समय लड़के चाय-सिगरेट के लिये बाजार में आ जाते हैं। दुकानों पर उठ-बैठ कर, आते-जाते मुसाफिरों का मजाक कर या दुकानों के ऊपर गृहस्थियों की खिड़कियों में ताक-झांक और चुहल करके दिल बहलाते हैं। मोतीराम शरणार्थी के रेडियो से गाना और खबरें भी सुनते हैं।

तिलोकसिंह एक तो थोकदार का लड़का, दूसरे इस उम्र में हाथ-पांव चलने को बेचैन रहते ही हैं। वह प्रायः तीन-चार साथियों से घिरा हुआ, कलगीदार मुर्गे की तरह गर्दन उठाये, इधर-उधर झांकता चलता था। वह चाय पीता तो साथी भी साथ पीते। वह सिगरेट की डिबिया खरीदता तो सब सिगरेट वांट

कर, खाली डिबिया को फुटबाल की तरह ठोकर से उछाल देता। उस के साथी खुशामद करते—"·····थोकदार जिस लौंडिया पर नजर डाल दे, बच के नहीं जा सकती।" तिलोकसिंह दोनों हाथ तत्परता की मुद्रा में कमर पर टिका लेता। गर्दन टेढ़ी कर, आंखों की पुतलियां दांये कोनों में और सिगरेट को होठों के बायें कोने में थाम कर उत्तर देता, "हां तो फिर क्या कहते हो; ···डर किसी का ?"

दर्जी बशीर की बुढ़ापे की शादी की एकमात्र लड़की 'नाजू' उम्र को आ रही थी। रंग गोरा और आंखें बड़ी-बड़ी। 'मंडुये' की काली रोटी, 'सिशौणा' (बिच्छू-बूटी) का साग और मोटा लाल चावल खा कर भी जाने कैसे उस के शरीर पर पकी खुबानी की ललाई और दूध की चिकनाई छाये जा रही थी। छरहरा शरीर अभी पूरा नहीं गदराया था पर छातियों पर उभार आ गया था, इतना कि दौड़ने-भागने में संकोच होने लगा। बचपन में बस्ती के जिन लौंडों के साथ झोंटा खोले खेलती फिरती थी और जिन लोगों की गोद में बड़ी हुई थी, अब उन्हीं से शरमाने लगी।

बशीर और नज्मा की मां दोनों ही लड़की के, बरसात में कद्दू की सहसा लपक जाने वाली बेल की तरह बढ़ जाने से चिन्तित थे। लड़की मां से भी दो उंगल ऊंचा सिर उठा रही थी। बशीर को गरुड़, बेरीनाग, बागेश्वर, सोमेश्वर या अल्मोड़ा जाने का कोई मौका मिलता तो वह लड़की के लिये लड़का ढूंढ़ पाता परन्तु फुर्सत ही नहीं मिल रही थी। लड़की का निकाह करा देने के लिये दो-चार कपड़े, बर्तन-भांड़े की भी जरूरत थी ही। अभी मशीन के दामों का कर्ज पूरा नहीं हो पाया था। गल्ला रुपये का डेढ़-दो सेर मुश्किल से मिल रहा था। सिलाई के दाम बढ़ाने को कोई तैयार नहीं था। एक दिन की भी मजदूरी छोड़ दे तो खाये क्या ? बशीर, नाजू की मां और नाजू सभी मिल कर काम करते थे, तब कहीं कुछ बन पाता था। बशीर कपड़े काट-काट कर देता जाता। पीछे की कोठरी में बैठीं मां और बेटी कच्चा कर देतीं या काज-बटन लगाती रहतीं। बशीर मशीन चलाता रहता।

नाजू के कारण स्कूल के लौंडे, मसूद और लक्खीराम की दुकानें छोड़ कर सिलाई के लिये बशीर के यहां ही घिरने लगे। बशीर मियां को अपने कौशल पर अभिमान होने लगा। वह इसे 'अल्लाह' की बरक्कत समझ कर जी-जान से मेहनत करने लगे लेकिन नाजू खूब समझती थी। मन में गुदगुदी भी उठती और कभी लौंडे ज्यादा बेशर्मी से घूरने लगते, पिछवाड़े के जंगल से ईंधन लाते या

इधर-उधर भटक गई मुर्गियों को ढूंढ़ते और 'कूल' से पानी का घड़ा लाते समय बोली-ठोली से इशारेबाजी करने लगते तो झुंझलाहट भी उठती। यहां तक कि कभी-कभी सम्मान की रक्षा के लिये गाली दे देने, पत्थर मारने या बाप से शिकायत कर देने की धमकी भी देनी पड़ जाती।

तिलोकसिंह नाजू के चक्कर में, दो-तीन कमीज पाजामे और एक कोट बशीर से सिला चुका था। वह कोट की बांहों या कालर का ऐब ठीक कराने के बहाने बार-बार दुकान पर जा पहुंचता। कभी अण्डा खरीदने के बहाने पिछवाड़े पुकार लगा देता। नाजू खूब समझती थी। यों तिलोकसिंह उसे भी अच्छा लगता था, उस का रोबदाब था पर वह तिलोकसिंह को खिझाने के लिये या तो छिप जाती या आंखें नीची कर लेती। तिलोकसिंह और दूसरे कई लौंडों के नाम वह जान गयी थी या लौंडों ने ही उस के सामने एक दूसरे को पुकार-पुकार कर अपने नाम सुना दिये थे।

एक एतवार के दिन तिलोकसिंह तीन-चार लड़कों को लिये सुबह ही चाय पीने दुकानों पर गया था। नाजू सड़क पार लक्खीसाह के यहां से बड़ी सी हांडी में छाछ लेकर, हांडी दोनों हाथों में सम्भाले, लौट रही थी। तिलोकसिंह ने कनखियों से उस की ओर देख कर कहा—"·····छाछ के लिये इतनी तकलीफ, कहो दूध से नहला दें ?"

"अपनी ईजा (मां) को नहला।" क्रोध में पीछे घूम कर नाजू ने अंगूठा दिखा कर उत्तर दिया और झट अपनी दुकान में जा घुसी।

साथियों के सामने तिलोकसिंह की हेठी हो गई। उसने कन्धे ऐंठा कर हाथ में न आ सकने योग्य मूंछों के रोयें सहलाये और अपने साथियों को सुना कर बोला—"अच्छा, हरामजादी को देखूंगा·····।"

तिलोकसिंह नाजू को सीधा करने के अवसर की खोज में रहने लगा। उसे मालूम था कि तीसरे पहर कभी नाजू और कभी उस की मां दुकानों के पिछवाड़े के जंगल में ईंधन के लिये जाती हैं लेकिन स्त्रियां अकेली नहीं, प्रायः दो-दो, चार-चार साथ जाती हैं। वह प्रतीक्षा में ऊबता जा रहा था। एक दिन उस ने पढ़ाई के समय, टेकरी पर बने स्कूल की खिड़की से देखा कि नाजू की मां, दो पड़ोसिनों के साथ ईंधन के लिये जंगल की ओर जा रही थी। तिलोकसिंह स्कूल से उठ आया। वह बाजार की बस्ती के पिछवाड़े साग-सब्जी उगाने के लिये बनाये छोटे-छोटे खेतों की बाड़ों के पीछे दुबकता हुआ, बशीर की दुकान के

पिछवाड़े के दरवाजे पर जा पहुंचा। नाजू की मां आंगन के किवाड़ उड़क गयी थी। किवाड़ हाथ के दवाव से खुल गये। नाजू पिछवाड़े की कोठरी में, रोशनी के लिये आंगन की ओर के दरवाजे में वैठी सिर झुकाये, गुनगुनाती हुई, कमीज के काज वना रही थी। दुकान से वशीर की मशीन की घरघराहट सुनाई दे रही थी परन्तु दरवाजे आमने-सामने न होने के कारण दुकान ओझल थी।

तिलोकसिंह पंजों के वल आंगन पार कर गया। परछाईं पड़ने पर नाजू ने आंख उठा कर देखा तो चेहरा फक·····! तिलोकसिंह ने पंजों के वल उस के सामने वैठ कर, दवे स्वर में पूछा—"अब वोल,·····और दिखा अंगूठा!"

नाजू ने गहरा सांस खींचा और पीछे सरकते हुए, धीमे स्वर में धमकाया, "वापू को पुकारती हूं।"

"पुकार!" ढिठाई से तिलोकसिंह ने उत्तर दिया, "कहूंगा, इसी ने पिछवाड़े से पुकारा था—आ, आ, ईजा नहीं है।"

"तेरे पांव पड़ती हूं, यहां से जा!" नाजू हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाई।

"क्यों!····और सब से तो खूव हंसती-वोलती है, हम ने कौन मरा कुत्ता घसीटा है?····हमारी क्या जात नीची है? हम तो तेरे लिये जान हथेली पर लिये फिरते हैं।" तिलोकसिंह ने मुस्कराकर नाजू की कलाई पकड़ने के लिये हाथ वढ़ाया।

"झूठ" पीछे सरक कर नाजू ने विरोध किया, "मैं कब किस से हंसी-वोली?"

"उस दिन गाली क्यों दी थी?"

"हाय, तो तू सब के सामने·····" वह चुप रह गयी।

"अच्छा तो हमारी तेरी रही, किसी को खवर नहीं होने की।" तिलोक ने उस की आंखों में देखा।

"तेरे पांव पड़ती हूं, यहां से जा!" सिमटते हुए नाजू फिर गिड़गिड़ाई, "वापू सुन लेगा, कोई आ जायेगा!"

"अच्छा तो फिर वाहर मिलना। कल दिया जले वाद आना खड्ड में, भूत वाले पीपल के नीचे।"

"हाय, अव जा!" नाजू ने फिर हाथ जोड़े, "अभी जा!" नाजू ने पीछे सरकते हुए दोहराया। तिलोकसिंह का शरीर सनसना रहा था, "अच्छा तो कौल कर, हाथ मिला!"

नाजू ने डरते-डरते हाथ बढ़ा दिया। तिलोक ने उसे हाथ से खींच लिया और उस के सिर पीछे हटाते-हटाते उस पर झुक कर अपने होठों से उस के होठों को रगड़ कर फुसफुसाया—"अब तू हमारी हो गयी, याद रहे !" और पंजों के बल बाहर निकल गया।

तिलोकसिंह चला गया तो नाजू की जान में जान आयी, कंपकंपी बंद हुई। निर्भय होने के लिये उठकर आंगन के किवाड़ों में उड़का लगा दिया। सोचने लगी—हाय, यह क्या हो गया ? कपड़ा और सुई अब भी हाथ में ही थे परन्तु आंखें तर हो जाने और सिर घूम जाने के कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। होठों पर अब भी हल्की-हल्की मिर्च सी लग रही थी—हाय, कोई देख लेता तो·····।

"बेटी काज बन गये तो दे जा !" नाजू ने सुना और, सूखे गले से घूंट भर उत्तर दिया, "बना रही हूं अब्बा !" कह तो दिया पर बना नहीं पा रही थी। जैसे-तैसे काज समाप्त कर बाप के पास ले गयी और बोली, "सिर में बड़े जोर का दरद हो रहा है अब्बा, आंख नहीं टिक पा रही इस बखत।"

नाजू खाट पर जा लेटी और आंखें मूंद कर सोचने लगी—हाय, कोई देख लेता तो·····! फिर ख्याल आया—दूसरे लौंडे तो टुच्चे हैं। इस का कलेजा तो है। वह बहुत देर तक सोचती और कल्पना करती रही और उसे जान पड़ा—अब उस की अपनी एक बात है, जिसे कोई नहीं जानता। कानों में बराबर गूंज रहा था—'हम तो तेरे लिये जान हथेली पर लिये फिरते हैं !' उस ने अपने होठों पर जीभ लगाकर उन्हें चखा और स्वयं शर्मा गयी। याद आया कि अब तू हमारी हो गयी, याद रहे !

नाजू बाप और मां की आंखों से कतरा रही थी, जैसे वे उस की उभरी-उभरी छातियों के नीचे छिपी बात भांप लेंगे। उस रात वह मां की बगल लेटी तो उसे मां और अपने बीच एक कूल सी बहती जान पड़ रही थी जैसे उस का अपना जीवन अब अलग बन गया हो। मन चाहता था, कहीं अलग सोये। मां से क्यों चिपटी रहे ? बड़ी भारी चिन्ता तो थी कि कल का वायदा कैसे पूरेगी ? भूत वाले पीपल के नीचे डर के मारे कोई आयगा तो नहीं ! सोचा···अगर भूत आ ही जाय ?···हाय, क्यों आयगा भूत ? शाम को थोड़ी देर के लिये घर से बाहर जाने के उस ने कई बहाने सोच डाले।

अगले दिन नाजू की मां शाम से ही उबैदुल्ला बजाज के यहां गई हुई थी।

उवैद की बहू के बाल-बच्चा हुआ था। वशीर मियां सूरज छिप जाने पर आंखों से मजबूर हो कर काम नहीं कर पाते थे इसलिये दुअन्नी भर अफीम खाकर अल्लाह को याद करते-करते ऊंघते रहते। उस समय चाहते कि उन्हें कोई न पुकारे। अंधेरा घना हुआ तो नाजू ने आंचल दांत तले दबाया और खड्ड की ओर चल दी।

तिलोकसिंह बहुत उतावला हो रहा था। कभी नाजू को बाहों में दबाना चाहता कभी उसे गोद में ले लेना चाहता। इधर-उधर हाथ चला रहा था। नाजू लड़खड़ाते हाथों से उसे बरज रही थी--"लोगों को पता चल जायगा तो मेरा मूड़ काट लेंगे।"

"कैसे पता चल जायगा ?"

"कुछ हो गया तो ?" उस ने अंधेरे में तिलोकसिंह से आंखें मिलाते हुये पूछा।

"क्या कहती है !" उसे कंधों से थाम, सामने कर, तिलोकसिंह ने विश्वास दिलाया, "तुझे कोई कुछ कहेगा तो पहले मेरा मूंड़ गिरेगा।.....मैं तुझे देस ले जाऊंगा। यहां क्या रखा है !"

"सच कहता है ?" नाजू की आंखें चमक उठीं।

"नहीं तो क्या ?"

"देओं की कसम ?"

"देओं की कसम !...तू क्या मुझे नहीं चाहती ?"

"चाहती नहीं तो क्या ?" नाजू उस के कंधे पर लुढ़क कर बोली, "मुझे देस ले चल।"

उस संध्या के बाद तिलोकसिंह लौंडों से घिरा रहने पर, नाजू से ताक-झांक न करता। अकेला सामने चाय की दुकान पर आकर बैठता तो ऊपर खिड़की में बैठी नाजू से आंखें मिलाता रहता। नाजू प्यार का इशारा कर मुस्करा भी देती। नाजू अंधेरा होने पर उबैदुल्ला के यहां से कोई चीज लेकर या देकर लौटती तो बहुत धीमे-धीमे, ठुमकती हुई कि बाजार में कोई है या नहीं, है तो कौन ?

तिलोकसिंह भी समझ गया था। एक दिन ऐसे ही पास से गुजरते-गुजरते बात हुई। तिलोकसिंह ने कहा—"आज खड्ड में आना।"

"आज नहीं, फिर !" नज्मा धीमे से कह गयी।

दूसरी बार भी नज्मा को अवसर न मिला। तिलोकसिंह को जान पड़ा कि धोखा दे रही थी। उस ने सोचा, अच्छा देखा जायेगा.....

महीना भी नहीं बीता था कि····।

× × ×

चौथा पहर ढल रहा था। लड़के स्कूल से बोर्डिंग में लौट कर आराम या हंसी-मजाक कर रहे थे। बच्चीसिंह ताश की गड्डी फरफराता हुआ, कुन्दन और प्यारे को साथ लिये तिलोकसिंह को खेल की चुनौती दे रहा था।

"साले, पहले हारा हुआ चुका ले तो खेल का नाम लेना! चूतड़ों में गूं नहीं, कौओं को न्योता दे रहे हैं। तिलोकसिंह बच्चीसिंह की चुनौती के उत्तर में धमका रहा था। लड़कों का ध्यान, आहट पाकर, टेकरी की पगडण्डी की ओर गया। पगडण्डी पर शरणार्थी बजाज मोतीराम और नन्दलाल तेज कदमों से चले आ रहे थे।

मोतीराम हाथ में अखबार लिये था। समीप आकर वह क्रोध और उत्तेजना में गाली देकर पुकार उठा—"डूब मरो तुम हिन्दुओ! पंजाब में इतना कुछ हो गया। तुम लोगों की·····में खाज भी नहीं हुई। सालो, डूब मरो और हौंसले बढ़ाओ इन·····मुशलियों के। अब और क्या चाहिये? तुम्हारे पड़ोस बागेश्वर में ही उस हरामी मादर·····कादिर ने ब्राह्मणी को खराब कर दिया। बंगाल में रोज हजारों हिन्दू कट रहे हैं। देख लो, यह अखबार।" उसने अखबार दिखाया, "तुम इन मादर·····सांपों को खूब दूध पिला-पिला कर पालो और यह तुम्हारी बहू-बेटियों को खराब करें। देखते क्या हो, हिन्दू पंजाब और बंगाल से निकाले गये, अभी यह लोग तुम्हारे चूतड़ों पर लात मार कर तुम्हें यहां से भी निकालेंगे। तुम कान में तेल डाले पड़े रहो·····।"

सब लड़के सिमिट आये। प्यारे मोतीराम के हाथ से अखबार लेकर सब को सुनाने लगा—ढाका से हजारों हिन्दू हाय-हाय करते पश्चिम बंगाल की ओर आ रहे हैं। उन का सब माल-मता और जवान लड़कियां और स्त्रियां छीन ली गयीं। जवान लड़कियों के साथ दस-दस आदमियों के बलात्कार करने और बूढ़ियों के स्तन काट लेने और नीचे से लेकर ऊपर तक पेट फाड़ देने की खबरें थीं।

नन्दलाल ने आंखों से चिनगारियां बरसाते हुये बताया कि पंजाब के गुजरात और वजीराबाद शहरों में हिन्दुओं के हाथ-पांव बांध-कर उन के सामने उन की स्त्रियों पर बलात्कार किया गया—"उस समय किसी बहन·····मां के लाल ने ठीक से बदला ले लिया होता तो आज यह फिर क्यों होता? लेकिन हिन्दुओं

की तो कौम ही·····बुजदिल है। यह साले कल मरते हों तो इन का आज मर जाना अच्छा·····।"

"बहन·····ठाकुरों, राजपूतों के लौंडे हो!" मोतीराम ने घृणा के स्वर में ललकारा, "मर जाओ डूब कर अपने ही पेशाव में! हम लोगों ने पूर्वी पंजाब में एक मुसले को नहीं छोड़ा। हमारी तो यह कांग्रेसी सरकार दुश्मन है। यह हमें न रोक लेती तो पेशावर तक बहन·····मुसलमानों का तुखम मिटा देते। तुम यहां घंघरिया और चूड़ियां पहन लो! पाकिस्तान में हिन्दू नहीं रह सकते तो हिन्दुस्तान में मुसल्टे क्यों रहें? वे बहन····अपने यहां हिन्दू को दुश्मन मान कर मिटाये दे रहे हैं और तुम इन सांपों को आस्तीन में रख कर पुचकारो! होने तो लगा अब तुम्हारे भी घर में! देख लो, हो तो गया बागेश्वर में, देख लो न जा कर? जब तक एक-एक हिन्दू की जान और हिन्दू औरत की इज्जत का बदला नहीं लोगे, तुम्हारा बीज नाश हो जायेगा। देखते क्या हो? क्यों थोकदार!" उसने तिलोकसिंह को ललकारा और फिर बच्चीसिंह की ओर देखा, "क्यों ठाकुर?"

"इन बहन····मुशलियों की मां····!" बच्चीसिंह ने ताश की गड्डी फर्श पर पटक दी और अपनी खाट के पास, कोने में रखी लाठी की ओर लपका। सभी लड़के आपे से बाहर हो गये। तिलोकसिंह ने भी एक डंडा उठा लिया। जिस के हाथ जो आया लेकर, सब लड़के मोतीराम और नन्दलाल के साथ टेकरी से ऐसे दौड़ते हुये उतरे, जैसे पत्थरों का ढेर ढलवान पर से लुढ़क पड़ा हो।

बाजार में पहुंच कर उन लोगों के हाथ में खुखरी, बल्लम, तलवारें और छुरे भी आ गये। बाजार के हिन्दुओं में ढाका और बागेश्वर की अफवाहों से पहले ही उत्तेजना फैली हुई थी। लड़कों के साथ क्रोध से उन्मत्त, बाजार के बीस-पच्चीस हिन्दू भी हो गये। भीड़ ललकारने लगी—"मारो साले····· मुशलियों को!"

सब से पहले नन्दलाल के प्रतिद्वन्द्वी बजाज उबैदुल्ला की दुकान और घर था। बच्चीसिंह ने जाते ही एक बल्लम उस की पसलियों से पार कर दिया। तिलोकसिंह भी डंडा फेंक किसी के हाथ से तलवार ले चुका था। उस ने भय से चिल्ला कर भागते, उबैद के जवान लड़के अकबर के पेट में तलवार भोंक दी। शोर मच गया—मारो साले मादर·····मुशलियों को।

उत्तेजित भीड़ उबैद के घर के भीतर धंस गयी। पूर्वी और पश्चिमी

पाकिस्तान में हिन्दू स्त्रियों के साथ किये गये बलात्कार और वीभत्स अत्याचार के वर्णन उत्तेजित भीड़ की कल्पना को पागल किये हुये थे। वे अपनी जाति की मां-बहनों पर किये गये अत्याचार का बदला पाई-पाई उगहा लेने पर तुले हुये थे। पाकिस्तान के वर्णनों के अनुसार उबैद की जवान बहू और लड़की को नंगा कर दिया गया और याद कर के उन के अंगों के साथ वही व्यवहार किया गया जैसा कि मुसलमानों द्वारा हिन्दू स्त्रियों से किये जाने की बात सुनी थी। उबैद की घरवाली की छाती पर भय से चिपटे पोते की पीठ को छेदता हुआ बल्लम दादी की पीठ के पीछे निकल गया। मरी हुई बुढ़िया के स्तन काटकर, हिन्दू स्त्रियों के स्तन काटे जाने का हिसाब चुकता कर दिया गया। पाकिस्तान में मुसलमानों ने अत्याचार किये। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं ने बदला लिया। मारी गयी दोनों जगह बेबस औरतें।

उबैद बाजार और पास-पड़ोस में सैकड़ों आदमियों के काम आता था। वह किसी का शत्रु नहीं था, कोई उस का शत्रु नहीं था परन्तु यहां व्यक्तियों की शत्रुता-मित्रता का सवाल ही नहीं था। यह जातियों का मामला था, जिस में व्यक्ति खो जाते हैं। व्यक्तिगत रूप से कोई नहीं सोचता। सामूहिक झोंक सब को निर्मम और निर्भय बना देती है। व्यक्ति का विवेक दीपक की लौ की तरह होता है और भीड़ की उत्तेजना बड़वानल की तरह। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और लिहाज उस बड़वानल में जल जाते हैं। उबैद का परिवार समाप्त हो गया परन्तु भीड़ की प्रतिहिंसा तृप्त न हुई। उन के मन में लाखों परिवारों के विनाश की जलन थी। एक परिवार को भस्म कर भीड़ की बड़वानल की लपटें और प्रबल हो उठीं जैसे आग में तेल पड़ गया हो! उन के सिरों पर खून चढ़ गया। भीड़ बावली उत्तेजना में प्रतिकार के लिये विनाश के नारे लगाती आगे बढ़ी।

बिसाती रसूले और दर्जी बशीर की दूकानें साथ-साथ थीं। उन्होंने उबैद की दुकान से हल्ला सुना था परन्तु बात नहीं समझ पाये थे। समझा था, दिहात के जाहिल आपस में भिड़ गये हैं। हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा तो वहां कभी किसी ने सुना ही नहीं था। भीड़ को 'मारो मुशलों को!' चिल्लाते हुये और खून से लथपथ बल्लम और तलवारें लिये अपनी दुकान की ओर बढ़ते देख कर बशीर हड़बड़ाकर मशीन से उठा और दुकान के किवाड़ बन्द करने का यत्न करने लगा। तिलोकसिंह ने लपककर, बन्द होते किवाड़ों के बीच से तलवार उस के शरीर में भोंक दी।

वशीर चिल्ला कर गिर पड़ा। किवाड़ बन्द नहीं हो पाये। भीड़ किवाड़ धकेल कर वशीर को रौंदती हुई भीतर घुस गई। सामने दिखायी दी हाय-हाय करती बशीर की प्रौढ़ा घरवाली। लोगों ने उसे पकड़ लिया। उस के शरीर से भी वही व्यवहार हुआ जो पाकिस्तान में हुकूमते इलाही और पूर्वी पंजाब में 'हिन्दू राज' कायम करने का दावा करने वालों ने सिखाया था।

"मादर·····हरामजादी लौंडिया कहां है ?" किसी ने पुकारा और कुछ लोग नाजू को ढूंढ़ने ऊपर की पड़छत्ती पर पहुंचे। तिलोकसिंह ऊपर न जा कर पिछवाड़े के आंगन में गया। आंगन के खुले दरवाजे से उसे दिखायी दिया—नाजू खेतों की बाड़ों के पीछे सिर पर पांव रखे जंगल की ओर भागी जा रही थी। वह उस के पीछे-पीछे भागा।

भीड़ ने ऊपर की मंजिल का कोना-कोना छान डाला और समझा कि लौंडिया साथ के बिसाती रसूले के यहां जा छिपी है। नाजू को परिवार के साथ ही समाप्त कर देने के लिये भीड़ उस ओर झुक गयी। उतनी देर में उस का पीछा करता तिलोकसिंह और नाजू पेड़ों से छायी एक टेकरी के पीछे ओझल हो चुके थे।

नाजू पीछा किया जाने की आहट पा कर और भी जोर से दौड़ी परन्तु औरत, औरत होती है और मर्द, मर्द ! तिलोकसिंह उस के समीप पहुंच कर हांफ गया था, उस ने जोर से डपटा—"ठहर !"

नाजू के पांव भय से लड़खड़ा गये। उस ने निराशा से लौटकर देखा, पहचाना—"तू" और सान्त्वना का सांस भर उस ने बाहें फैला दीं।

तिलोकसिंह ने उसे बांह से पकड़ कर जोर से झिझोड़ा और दांत से होंठ काटते कर धमकाया—"और छका ले·····और भाग !"

दोनों हांफ रहे थे। दोनों के दिल धक-धक कर रहे थे। दोनों की आंखें फैली हुई थीं; एक की क्रोध और उत्तेजना से, दूसरे की भय और कातरता से। नाजू तिलोकसिंह के कन्धे पर लुढ़क कर, उस से लिपट गयी—"मैं तुझ से थोड़े ही भाग रही हूं····।" उस ने आंखें मूंद लीं।

तिलोकसिंह ने हाथ की तलवार धरती पर डाल दी और नाजू को दोनों बाहों से पकड़, घिघारू के कांटों से परे, एक ओर घसीट कर गिरा दिया। नाजू उस से और भी चिपटती जा रही थी। तिलोकसिंह की इस निर्दयता से उसे सन्तोष और सुख मिल रहा था। वह इसे तिलोकसिंह के प्यार का क्रोध

समझ रही थी और समझ रही थी कि वह रक्षा का अधिकार पा रही है।

नाजू ने आंखें खोली तो बाहें तिलोकसिंह के गले में डाल अनुरोध किया—"मुझे देस ले चल !"

"हूं" अपने को संभालते हुए तिलोकसिंह ने उत्तर दिया, "पहुंचाता हुं तुझे देस·····।"

उसी समय घिघारू की झाड़ियों की ओट से भीड़ की आहट फिर सुनाई दी और झाड़ियों के ऊपर से लोगों के सिर भी दिखाई दिये।

रसूले का घर और परिवार समाप्त करके भी जब नाजू और रसूले का सोलह बरस का लड़का रहमत न मिले तो भीड़ के कुछ लोग उन्हें खोजते हुए इधर आ निकले थे।

"यह है मादर····मुसल्टी" ! अपने को सम्भालते हुए तिलोकसिंह ने भीड़ की ओर घूम कर पुकारा।

"हाय, मैं तेरी हूं ! मैं हिन्दू हो गई !" नाजू तिलोकसिंह की कमर से लिपट कर कातरता से पुकार उठी, "मुझे बचा !"

पुकार सुन कर लोग उस ओर आ गये। नाजू छिपने के लिये एक झाड़ी के पीछे दौड़ी। तिलोकसिंह ने लपक कर उस की बांह पकड़ ली और भीड़ को सम्बोधन किया—"सब लोग इस हरामजादी पर····"

नन्दलाल और तारू ने नाजू को दोनों बाहों से थाम लिया।

तारू बाजार का ही लड़का था। उसे पहचान कर नाजू हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ायी—"दाज्यु (बड़े भाई), मैं तेरी बहिन हूं !··· मैं हिन्दू हो गई !"

उन लोगों के बीच हाय-हाय करती और सिसकती नाजू का लहूलुहान शरीर अव्यवस्थित और खुला पड़ा था। वह अपने आप को सम्भाल सकने में भी असमर्थ थी।

"अब खतम करो इस हरामजादी को !" कोई बोला।

नौजवानों के क्रोध की आग उन का पौरुष व्यय हो जाने से धीमी पड़ गई थी। तिलोकसिंह के हाथ से जमीन पर गिरी हुई तलवार, कई लोगों के पांव की ठोकरों से, झाड़ियों और घनी घास में जाने कहां छिप गई थी। तिलोकसिंह और दूसरे लोगों ने तलवार के लिये इधर-उधर आंखें दौड़ाई, पांव से टटोला तलवार मिली नहीं।

तिलोकसिंह ने जेब में पड़ा छोटा चाकू निकाल लिया और नाजू पर

झपटा। तिलोकसिंह को चाकू लिये अपने ऊपर झुकते देख नाजू बचाव के लिये दोनों हाथ बढ़ा चीख उठी—"हाय ना ! मैं हिन्दू···"

तिलोकसिंह ने रक्षा के लिये उठे नाजू के हाथों को बायें हाथ से एक ओर झटक उसे नीचे से पेट तक फाड़ देने के लिये चाकू चला दिया।

नाजू चीख कर चुप हो गई। तिलोकसिंह के हाथ कांप जाने या चाकू छोटा होने के कारण अधिक काट न कर सका। भीड़ नाजू को समाप्त समझ, गाली देती हुई लौट गई।

× × ×

बड़ौरी और पड़ोस के देहात के कांग्रेसी लोगों को अपनी बस्ती में ऐसा अत्याचार हो जाना सह्य नहीं था। उन्हों ने दंगे की खबर पाते ही, सरपंच, मुखिया और पटवारी को बुलवा कर घायलों को ढूंढ़ना शुरू किया। बाजार के जो लोग पहले 'मुशल्टों को मारो !' चिल्ला रहे थे, अब लज्जित हो कर सहायता के लिये आ जुटे। जले हुए मकानों पर पहरा लगा दिया गया कि चोरी-चकारी न हो सके। बशीर जख्मी हो कर बेहोश हो गया था परन्तु प्राण शेष थे। ऐसी ही हालत नजीर लुहार की थी। लालटेनों और मशालों की सहायता से क्षत-विक्षत हालत में कराहती हुई नाजू भी ढूंढ़ ली गयी। कांग्रेस के लोगों ने जख्मियों को डोलियों में लाद कर, अपने कन्धों पर, मीलों दूर बागेश्वर के अस्पताल में पहुंचाया। मुर्दे, जांच-पड़ताल के बाद दफनाये जाने के लिये एक जगह इकट्ठे कर दिये गये।

कांग्रेसी राज में ऐसी दुर्घटना हो जाने के कारण, कांग्रेसी दुखी और लज्जित थे। उन की नजर में हिन्दू, मुसलमान का विचार नहीं, आदमी का विचार था। वे चाहते थे, अपराधियों को पूरा दण्ड मिले, न्याय हो। फिर ऐसी घटना न हो सके। दुनिया देख ले, कांग्रेसी राज हिन्दुओं का नहीं, न्याय का है। सरकार भी बहुत मुस्तैदी से मामले की जांच करवा रही थी। बड़ौरी में पुलिस और सशस्त्र-पुलिस के पड़ाव पड़ गये। कांग्रेसी लोग जनता को न्याय के लिये पुकार कर, अपराधियों और संदिग्ध लोगों को गिरफ्तार करवा रहे थे। बाजार के दस आदमियों के साथ चार पंजाबी शरणार्थी तिलोकसिंह, बच्चीसिंह और स्कूल के चार और लड़के भी गिरफ्तार कर लिये गये।

तिलोकसिंह के पिता जोधसिंह ने लड़के की गिरफ्तारी की खबर सुनी तो उस के पांव तले से धरती निकल गई। सभी ने समझाया कि मामला संगीन है। सरकार सख्ती से काम ले रही है। पुलिस को खिलाने-पिलाने से कुछ नहीं बनेगा। बचने का एक ही उपाय है कि तिलोकसिंह सच-सच कह कर क्षमा मांग ले और सरकारी गवाह बन जाये।

पुलिस ने अपराधियों को डरा कर भेद लेने के लिये अलग-अलग बन्द कर दिया था। सभी को बताया गया कि जख्मियों के बयानों से और दूसरे लोगों के बयानों से सब बात पता लग चुकी है। तिलोकसिंह को फांसी और काले-पानी का भय दिखाया गया। उस के पिता ने रो-रो कर उसे समझाया और तिलोकसिंह ने अपने प्राण बचाने के लिये सब बक दिया। पुलिस के खोद-खोद कर पूछने पर उस ने उबैद के कत्ल में सहयोग, बशीर को तलवार से बेधने और नाजू के साथ दुर्व्यवहार कर उसे कत्ल कर देने के लिये नीचे से काटना का अपराध भी स्वीकार कर लिया। उसे आशा थी, सरकारी गवाह बन कर सच बोल देने से बच जायेगा।

मामले की तहकीकात में महीनों लग गये। जख्मियों के चलने-फिरने योग्य हुए बिना उन्हें गवाही के लिये अदालत में लाया नहीं जा सकता था। मुकद्दमा आरम्भ होने पर जब सब लोगों को एक साथ अदालत में लाया गया तो पता चला कि अपराध केवल तिलोकसिंह ने ही कबूला था। लोग उस की लानत-मलामत करने लगे—".....मरेगा तो एक ही बार ? फिर किये-कराये धर्म और बहादुरी पर पानी फेर कर मुंह काला क्यों करवाता है ?"

यह भी पता चला कि बयान केवल बशीर और नजीर के ही हैं और पूरा मुकद्दमा तिलोकसिंह के इकबाल (अपराध स्वीकृत) पर ही खड़ा है। नाजू इतनी डरी और सहमी हुई है कि उस ने कोई बयान दिया ही नहीं था। लोगों के भरोसा दिलाने पर तिलोकसिंह अपने बयान से पलट गया। मुकद्दमे के लिये चतुर वकील की जरूरत थी इसलिये हमारे मित्र वकील साहब को खड़ा किया गया था। वकील साहब ने मामला देख कर गवाही कच्ची बताई और तिलोकसिंह को छुड़ा लेने का विश्वास दिला दिया।

इस बीच पता लगा कि नाजू केवल ठीक ही नहीं हो गई थी बल्कि उस के शरीर में एक और जान आ गई थी। उस के बाप ने माथा ठोंक लिया। जैसे-तैसे नाजू का निकाह सोमेश्वर के एक मुसलमान लुहार के लड़के से करा दिया

गया। बयान देने के लिये नाजू पर उस की बिरादरी और पुलिस का बहुत जोर पड़ रहा था क्योंकि तिलोकसिंह के पलट जाने से मुकद्दमे के पांव ही कट गये थे। नाजू बयान देना नहीं चाहती थी। बिरादरी के लोगों ने उसे फटकारा—अपने दीन और कौम पर जुल्म करने वाले काफिरों को बचायेगी ? ऐसे गुनाह के लिये अल्लाह तुझे दोजख में भी माफ नहीं करेगा। नाजू ने मजिस्ट्रेट के सामने अपना बयान दे दिया।

उत्साही हिन्दू भाइयों के यत्न से पुलिस की गवाहियां जम नहीं पा रही थीं। कुछ गवाह उखड़ गये, कुछ जिरह में कट गये। बहुत से अभियुक्त मजिस्ट्रेट के यहां से ही बरी हो गये। तिलोकसिंह, नन्दलाल, बच्चीसिंह और तारू का मामला सेशन सुपुर्द कर दिया गया। उन पर भी संगठित आक्रमण के षड़यंत्र का अभियोग न बन सका था इन पर अलग-अलग अभियोग लगाये गये थे।

पिछले दिन सेशन में संध्या समय तिलोकसिंह के मामले के मुख्य गवाहों बशीर और नाजू के बयान हुए थे। बशीर के बयान का मूल्य नाजू की गवाही के बिना कुछ नहीं था। नाजू चादर ओढ़े, आंखें नीची किये बयान दिये जा रही थी, वह बाप के शरीर में तलवार भोंकती देख कर अपनी जान बचाने के लिये भागने और लड़कों द्वारा पकड़ली जाने, अपनी दुर्दशा और चाकू के आक्रमण से बेहोश हो जाने और अस्पताल पहुंचाई जाने तक की सब कहानी धीमे-धीमे कह गई। वकील साहब को जान पड़ रहा था कि नाजू का प्रत्येक शब्द उन के अभियुक्त को अपराध की रस्सी से बांधे दे रहा है। कठघरे से चलते समय नाजू ने सिर्फ एक नजर तिलोकसिंह की ओर डाली। तिलोकसिंह का चेहरा फक था।

अगले दिन सफाई की ओर से जिरह थी। वकील साहब रात भर गवाही और जिरह के कानूनों और नजीरों का अध्ययन करते रहे थे। सुबह मानसिक उत्तेजना के कारण वे कुछ जल्दी ही अदालत आ गये थे और बरामदे के सामने धूप में कुर्सी पर बैठे बशीर और नाजू के बयानों को बारीकी से मिला कर उन में असंगतियां ढूंढ़ रहे थे। नाजू भी पुकार की प्रतीक्षा में अदालत के अहाते में खुबानी के पेड़ के नीचे बैठी थी। उस का बच्चा भी गोद में था।

पुलिस हथकड़ी बेड़ियों में जकड़े तिलोकसिंह को अदालत में लायी। बेड़ियों की खनखनाहट से वकील साहब की नजर अपने अभियुक्त की ओर गयी। बेड़ियों में जकड़ा तिलोकसिंह सिर झुकाये चला जा रहा था। वकील साहब ने घूम कर नाजू की ओर भी देखा, वह टकटकी लगाये तिलोकसिंह की ओर देख रही थी।

वकील साहब को ऐसा मालूम हुआ कि क्रुद्ध बाघिन हाथ से निकले शिकार को घूर रही हो। उन्हें ऐसा मालूम होता भी क्यों न ? उसी चुटियाई और वफरी हुई बाघिन के पंजे से उन्हें तिलोकसिंह को बचाना था।

वकील साहब ने जिरह में बशीर को काफी परेशान किया था और अदालत को इस परिणाम पर पहुंचा दिया था कि घटना के समय वह बदहवासी की हालत में था। उस के बयान की सचाई का प्रमाण क्या ? उन्होंने मन में सोच रखा था कि बशीर के बयान की गवाही है, नाजू, उसी की लड़की। वे अदालत को समझायेंगे कि बेटी तो पिता का समर्थन करेगी ही, कोई और भी तो प्रमाण होना चाहिये।

नाजू को जिरह के लिये कठघरे में पुकारा गया। वकील साहब को फिर जान पड़ा कि नाजू ने तिलोकसिंह को उड़ती-उड़ती नजरों से देखा है। वह शान्त और बेपरवाह दिखाई दे रही थी जैसे बिल्ली शिकार को पंजे के नीचे सुरक्षित समझ कर निश्चिन्त हो जाती है।

"तुम्हारा नाम नज्मा है ?" वकील साहब ने जिरह का पहला प्रश्न पूछा।

"हां" नाजू ने स्वीकार किया।

"तुम बशीर दर्जी की लड़की हो न ?"

"हां" नाजू ने हामी में गर्दन झुका ली।

"तुम ने तहकीकात के समय पुलिस या मैजिस्ट्रेट के सामने बयान दिया था ?"

"नहीं" नाजू ने इनकार में सिर हिला दिया।

"क्यों, क्या डर था किसी का ?"

"नहीं।"

"तो बयान क्यों नहीं दिया ?"

"ऐसे ही।"

"तो अब बयान कैसे दे रही हो ?"

"लोग नहीं मानते तो क्या करूं ?"

वकील साहब ने जज साहब की ओर देखा। जज साहब ने नाजू की ओर देखा। नाजू ने आंखें झुका लीं। वकील साहब ने कनपटी खुजा कर कुछ सोचा और प्रश्न किया—"इस का मतलब है तुम पर बयान देने के लिये जोर डाला गया है ?"

"हां, डाला तो है" नाजू ने हामी भरी।

"किस ने जोर डाला है ? पुलिस ने ?"

"और क्या" नाजू ने हामी भरी ।

"बाप और बिरादरी के लोगों ने भी जोर डाला है ?"

"हूं" नाजू ने सिर झुका कर स्वीकार किया ।

वकील साहब ऐसे हैरान थे जैसे उन्हों ने आत्मरक्षा में प्रहार के लिये हाथ उठाया हो परन्तु देखा कि उन्हें तो सहारा मिल रहा है । जल्दबाजी न करने के लिये उन्होंने कनपटी को खुजाया और धीमे से प्रश्न किया ।

"तुम तिलोकसिंह को पहचानती थीं ?"

"हूं ।"

"जिन लोगों ने तुम्हारी दुकान पर हमला किया, उन्हें पहचान लिया था ?"

"हूं ।"

"तुमने उस वक्त नन्दलाल, तारादत्त और लक्खी साह को पहचाना था ?"

"हूं ।"

वकील साहब ने कनपटी खुजायी और पूछ लिया—"उनमें तिलोकसिंह था ?"

"नहीं ।"

"जिन लोगों ने तुम्हें जंगल में पकड़ लिया था, उनमें तिलोकसिंह था ?"

"नहीं ।" नाजू ने सिर हिला दिया ।

वकील साहब ने संतोष का लम्बा सांस लेकर अदालत को धन्यवाद दिया और बोले उन्हें और जिरह की आवश्यकता नहीं, न सफाई की ओर से कोई गवाह पेश करके वे अदालत का समय लेना चाहते हैं । नाजू को गवाही के कठघरे से हट जाने की इजाजत दे दी गयी । तिलोकसिंह का बाप दंगे के दिन तिलोकसिंह के 'बडौरी' में न होने की गवाही मैजिस्ट्रेटी में पेश कर चुका था परन्तु वकील साहब ने अब उस की भी जरूरत न समझी ।

इस के बाद सरकारी वकील बोले और सफाई वकील भी कुछ बोले परन्तु जज के माथे पर बढ़ती जाती सिकुड़नों से जान पड़ रहा था कि समय व्यर्थ नष्ट किया जा रहा है । उन्होंने असेसरों की राय ली । असेसरों में केवल एक मुसलमान था । गवाही को देखते उस ने भी अभियुक्त के निर्दोष होने की ही राय दी । जज साहब फैसला लिखने भीतर के कमरे में चले गये । मालूम हुआ कि फैसला अभी दे दिया जायगा ।

वकील साहब तिलोकसिंह के बाप को एक ओर बुला कर आहिस्ता से

बोले—"तुम बेशक लड़के की बेड़ी यहां ही कटाने के लिये एक लोहार बुला लो।"

जोधसिंह की आंखों में कृतज्ञता के आंसू छलक आये। वह वकील साहब के पांव छू लेने के लिये झुक गया।

जज साहब ने फैसले में पुलिस की धांधली की निन्दा कर तिलोकसिंह को तुरन्त छोड़ दिये जाने का हुक्म दे दिया।

वकील साहब तिलोकसिंह के कंधे पर हाथ रखे उसे बरामदे में से लिवाये लिये जा रहे थे, तब फिर उन की निगाह सामने पेड़ के नीचे गयी। नाज़ू अपने बच्चे को गोद में लिये, बशीर और एक दूसरे आदमी के साथ पेड़ के समीप खड़ी थी। शायद जज साहब के फैसला लिखने में व्यस्त हो जाने के कारण उस के खुराकी-खर्च के कागज पर दस्तखत नहीं हो सके थे। वह अब भी टकटकी बांधे तिलोकसिंह की ओर देख रही थी।

तिलोकसिंह की नजर भी उस ओर गई। नाज़ू ने गोद के बच्चे को उसे दिखा कर चूम लिया और मुस्करा दी।

वकील साहब के पांव डगमगा गये। उन्होंने तिलोकसिंह की ओर देखा, उस की आंखें छलक आयी थीं और सिर झुक गया था।

वकील साहब कुर्सी पर उत्तेजना में सीधे होकर बोले—"हिन्दू इस जीत से खुश थे। पुलिस दांत पीस कर खिसिया कर रह गयी परन्तु जानते हो तीन महीने बाद, आज क्या देखा ?" वकील साहब ने मेरी बांह पर हाथ धर कर बताया, "आज दोपहर तिलोकसिंह को अस्पताल के पास देखा। उस का बाप उसे डांडी (डोली) पर लाया था। मुझे देख कर उस की आंखों में आंसू आ गये। बोला—वकील साहब, जाने इसे क्या हो गया है ? भूख ही नहीं लगती, बुखार सा रहता है। डाक्टर को दिखाया, उस ने तपेदिक बता दिया है। हुजूर, मैं तो बरबाद हो गया। इस का तो जानो मन मर गया है। जाने भाग में क्या बदा है ?"

वकील साहब एक लम्बी सांस ले कर बोले—"इसे किस की जीत कहा जाये ? हिन्दू की जीत, मुसलमान की जीत या न्याय की जीत ?······नाज़ू हिन्दू नहीं, इस्लाम को भी नहीं जानती, अहिंसा और उदारता नहीं समझती, उसे हिन्दू राज और मुस्लिम राज का भेद नहीं मालूम। वह औरत है, प्यार करना जानती है और प्यार में क्षमा करना जानती है······तो कौन हारेगा ? कितना हार कर भी वह जीत गई !"

——o::⁐::⁐::⁐::o——

INSTITUTE OF A[illegible]D ST
46476
2-2-71
LA

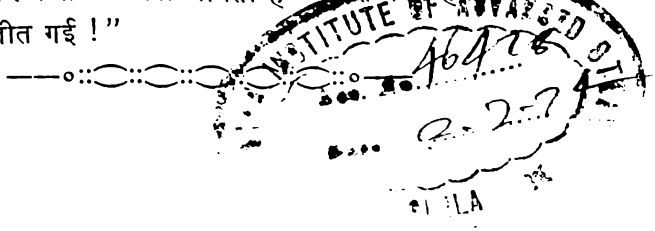

यशपाल साहित्य

संशोधित सूचीपत्र अक्टूबर १९६८

कहानी संग्रह

अभिशप्त	५—००
वो दुनिया	५—००
ज्ञानदान	५—००
पिंजड़े की उड़ान	५—००
तर्क का तूफान	५—००
भस्मावृत्त चिन्गारी	५—००
फूलो का कुर्त्ता	५—००
धर्मयुद्ध	५—००
उत्तराधिकारी	५—००
चित्र का शीर्षक	५—००
तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं ?	५—००
उत्तमी की मां	५—००
ओ भैरवी !	५—००
सच बोलने की भूल	५—००
खच्चर और आदमी	५—००
भूख के तीन दिन	६—००

राजनैतिक निबन्ध

रामराज्य की कथा	५—००
गांधीवाद की शव-परीक्षा	५—००
मार्क्सवाद (प्रेस में)	

हास्य निबन्ध

चक्कर क्लब	५—००
बात बात में बात	५—००
न्याय का संघर्ष	५—००
जग का मुजरा	५—००

उपन्यास

झूठासच–वतन और देश	१४—००
झूठासच–देश का भविष्य	१६—००
मनुष्य के रूप	७—५०
पक्का कदम	६—५०
देशद्रोही	७—००
दिव्या	६—००
गीता	४—००
दादा कामरेड	५—००
अमिता	६—००
जुलैखां	८—००
बारह घंटे	५—००
अप्सरा का श्राप	५—००
क्यों फंसें ? (प्रेस में)	

नाटक

नशे नशे की बात !	४—००

कथात्मक निबन्ध

देखा सोचा समझा	५—००
बीबी जी कहती हैं मेरा चेहरा रोबीला है	५—००

Library IIAS, Shimla
H 813.31 Y 26 Ut
00046478

सि	
सि	
सि	
लोहे की दीवार के दोनों ओर	७—००
राहबीती	५—००

विश्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ—१ (उ०प्र०)